परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 24, अंक 2, अगस्त 2017

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय

17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2017
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)

17–बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी–275, अवन्तिका, सेक्टर–1, रोहिणी, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त 2017

विषय सूची

आलेख

ऋषभ कुमार मिश्र
सामाजिक विज्ञान शिक्षण : विद्यालयी और विद्यालयेतर विमर्श की पारस्परिकता 1

बृजेश कुमार एवं **पी.के. साहू**
अध्यापक शिक्षकों की सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता का अध्ययन 25

चंद्रकाता जैन एवं **अखिलेश यादव**
उच्च माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति 53

शिव कुमार
दिव्यांग बच्चों के प्रति शिक्षामित्रों का दृष्टिकोण 67

शोध टिप्पणी / संवाद

शमीमा अंसारी एवं **शिरीष पाल सिंह**
मदरसे में शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का एक अध्ययन 75

रमेश प्रसाद पाठक एवं **अमिता पाण्डेय भारद्वाज**
आर्य समाज व गायत्री परिवार के शैक्षिक विचारों की वर्तमान शिक्षा में प्रासंगिकता 89

मधु गुप्ता एवं **विनीता सिंह**
माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य–संलग्नता का अध्ययन 101

संतोष यादव एवं **रजनी सिंह**
बच्चों की स्कूल के प्रति उदासीनता 109

चिंतक और चिंतन

शैलजा मिश्रा
आचार्य विनोबा भावे के दर्शन में निहित शान्ति शिक्षा 123

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त, 2017

सामाजिक विज्ञान शिक्षण
विद्यालयी और विद्यालयेतर विमर्श की पारस्परिकता

ऋषभ कुमार मिश्र*

प्रस्तावना

कक्षा में किसी विद्यार्थी की भूमिका और पहचान सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और भौगोलिक काल विशेष में स्थापित एक व्यक्ति विशेष की होती है। इन संदर्भों में अवस्थित सचेत कर्त्ता के रूप में वह अपने परिवेश को देखता और समझता है। कक्षा में शिक्षकों को ऐसे ही 'सीखने वालों के समुदाय' को संबोधित करना पड़ता है। इस पृष्ठभूमि में शिक्षक के लिए यह चुनौती होती है कि वे किस तरह सीखने वालों के अनुभव वैविध्य को सीखने का संसाधन बनाए? किस प्रकार से वे प्रत्येक विद्यार्थी को ज्ञानार्जन की विधियों, भाषा, कौशलों और अभ्यासों से समृद्ध करे, जिनकी मदद से विद्यार्थी न केवल अपने परिवेश की घटनाओं और प्रक्रियाओं की व्याख्या कर सकें बल्कि विद्यालय और विद्यालयेतर परिवेश में अपने निर्णयों और क्रियाओं को भी निर्देशित कर सके। इन उद्देश्यों को ऐसे शिक्षणशास्त्रीय परिवेश द्वारा पूरा किया जा सकता है जो विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक क्षमता और अकादमिक विषयवस्तु का संवर्धन करे, जो उन्हें अनुभव और ज्ञान की वृहद् राशि को साझा करने का मंच प्रदान करे और जो ऐसे शिक्षणशास्त्रीय उपकरणों से युक्त हो कि प्रत्येक सहभागी सीखने वालों के समुदाय में ज्ञान की सह-रचना का अभिकर्ता बने। सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लिए परिकल्पित इस शिक्षणशास्त्रीय परिवेश का विकास इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य है। इस हेतु सामाजिक विज्ञान की कक्षा को 'सीखने वालों का समुदाय' मानकर सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं का आयोजन, विवेचन और विश्लेषण किया गया है।

---

* सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

'सीखने वालों के समुदाय' के रूप में सामाजिक विज्ञान की कक्षा

सीखना वैयक्तिक प्रक्रिया मात्र न होकर एक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया होती है जिसमें सतत रूप से अर्थ का निर्माण, रूपान्तरण और विकास होता रहता है। यह प्रक्रिया न केवल संज्ञानात्मक क्षमता को प्रभावित करती है बल्कि शिक्षार्थी के व्यक्तित्व और पहचानों के भी निर्माण, रूपान्तरण और विकास को दिशा देती है (सफर्ड और प्रूसाक, 2005, गी, 2001)। यह दृष्टिकोण सीखने को एक विशिष्ट परिवेश में स्थापित और इसके सदस्यों तथा उपकरणों में वितरित मानता है (वॉयगात्स्की, 1987, लेव और वेन्जर, 1991)। इसके अनुसार सीखने वाला एक से अधिक अभ्यास-समुदायों का सदस्य होता है और इन समुदायों में सामाजिक अन्त:क्रिया, सहभागिता और संवाद की प्रक्रिया द्वारा ज्ञान का सह-निर्माण करता है (वेंजर, 1998)। प्रत्येक 'सीखने वाले समुदाय' के अपने लक्ष्य, इतिहास, अभ्यास, और सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार के मानक होते हैं, जो उसके सदस्यों के विचारों और क्रियाओं में प्रतिबिंबित होते हैं (थार्प और गैलीमोर, 1988)। इसी परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत इस अध्ययन में सामाजिक विज्ञान की कक्षा को 'सीखने वालों का समुदाय' माना गया है जो अन्य समुदायों की भाँति एक साझा उद्यम है जिसका लक्ष्य सामाजिक विज्ञान के विमर्श को सीखना-सिखाना है। इसके लिए समुदाय के सहभागी ऐसे अभ्यासों, क्रियाकलापों और गतिविधियों को अपनाते हैं जो समाज वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञान-निर्माण में प्रयुक्त होती है। इन्हें प्रमाणिक क्रियाकलाप (अथेनटिक एक्टिविटी) कहते हैं (ब्राउन, कोलिन्स और ड्यूगिड, 1989)। कक्षा के अभ्यास-समुदाय का अपना इतिहास होता है जिससे उसके सदस्य स्वयं को जोड़ते हैं और पहचानते हैं (हेडेगार्ड, 2001)। इस प्रकार से इस साझे इतिहास की बुनियाद पर कक्षा की संस्कृति का विकास होता है जहाँ विषयज्ञान के सतत निर्माण, विकास और रूपान्तरण की प्रक्रियाएं होती रहती हैं। कक्षा में सहभागी केवल विषय के ज्ञान को नहीं सीखते बल्कि शास्त्र विशेष में जानने के तरीकों व अभ्यासों, समुदाय के मानकों, अन्य सदस्यों के परिप्रेक्ष्यों और अपने विषय में भी सीखते हैं (लिमकी, 2000)। इस दृष्टि से सीखने का प्रमाण सहभागिता के बढ़ते स्तर, विशेषज्ञ की पहचान को अपनाने, वास्तविक दुनिया की समस्याओं को हल करने, अपने वैयक्तिक अनुभवों पर पुनर्विचार करने में निहित होती है (एनीडे और गोल्डबर्ग, 2004)। उपर्युक्त सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत कक्षा रूपी सीखने वालों का समुदाय, प्रत्येक सदस्य के अनुभवों, विचारों, पहचानों और क्रियाओं का समावेश, सम्मान और सहयोग करता है। यह कक्षा को ऐसे अभ्यास स्थल में

परिकल्पित करता है जहाँ प्रत्येक सहभागी के दैनंदिन विमर्शों और कक्षा विमर्शों के पारस्परिक मिलन से एक 'हाइब्रिड स्पेस' की रचना होती है जो विषय ज्ञान के सह-निर्माण को सुगम करती है।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में दैनंदिन विमर्श और कक्षागत विमर्श

दैनंदिन विमर्शों और कक्षागत विमर्शों में, अभ्यास के उपकरणों, जानने और अभिव्यक्त करने के तरीकों, विशेष रूप से भाषा आदि की भिन्नता होती है। दैनंदिन विमर्शों का विकास घरेलू कार्यों, स्थानीय सामुदायिक गतिविधियों, बाजार और व्यावसायिक संस्थानों में भागीदारी से होता है। इन अभ्यासों द्वारा निर्मित दैनंदिन ज्ञान, कार्यात्मक होता है जिसका प्रयोग विद्यार्थी अपने दैनिक समस्याओं के समाधान में करते हैं (रोगोफ, 1994)। कक्षा विमर्श की प्रकृति दैनंदिन विमर्शों से भिन्न होती है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि एक प्रकार का अभ्यास दूसरे प्रकार के अभ्यास से श्रेष्ठ या कमजोर है (लैडसन-बाइलिंग,1995, हिक्स, 1996)। दोनों प्रकार के विमर्शों में पारस्परिक सम्बंध होता है और वे एक दूसरे को सवंर्धित करते हैं (टॉन और बार्टन, 2010)। इस पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध-कार्य इन दोनों प्रकार के विमर्शों में अलगाव को अस्वीकार करता है और उन तरीकों और प्रभावों की खोज करता है जो इनके पारस्परिक संबंध पर आधारित है।

दैनंदिन ज्ञानराशि और हाइब्रिड स्पेश

दैनंदिन ज्ञानराशि वस्तुत: समय के साथ संचित, संस्कृति के साथ विकसित वे विश्वास, परिप्रेक्ष्य, धारणाएं और कुशलताएँ हैं जो एक व्यक्ति के निजी कार्यकरण, पारिवारिक और सामुदायिक सहभागिता के दौरान प्रयुक्त होती हैं (मोल, 2002)। इस दृष्टि से कक्षा में शिक्षणशास्त्रीय परिवेश की रचना इस प्रकार होनी चाहिए कि वह यह स्पष्ट कर सके कि लोग अपने दैनिक जीवन में क्या करते हैं, वे जो करते हैं उसके बारे में क्या कहते और सोचते है? (गोंजालेज, 2005)। इसके माध्यम से विषय की अमूर्त संकल्पनाओं और अवधारणाओं को कक्षा के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि दैनंदिन ज्ञान और विषय ज्ञान का अर्थपूर्ण संबंध विकसित हो सके। यह संबंध न तो विषय ज्ञान के सैद्धान्तिक संरूप में अप्रयोज्य रहे और न ही दैनंदिन ज्ञान के रूप में 'वैज्ञानिकता रहित' हो।

मोजे, चिकॉनोवस्की, क्रेमर, इलिस, कैरीलो और कोलॉजो (2004) ने ज्ञानराशि की संकल्पना के शिक्षणशास्त्रीय निहितार्थ को 'थर्ड स्पेस' या 'हाइब्रिड स्पेस' की परिकल्पना

द्वारा समझाया है। इनके अनुसार विद्यार्थियों का दैंनदिन जीवन परिवार, समुदाय और लोक संस्कृति आदि के विमर्शों से पुष्ट होता है। इसे इन्होंने प्रथम दिक्स्थान (फर्स्ट स्पेस) की संज्ञा दी है। जब विद्यार्थी विद्यालय आते हैं तो वे औपचारिक पाठ्यचर्या और शिक्षणशास्त्रीय विमर्शों के सहभागी बनते हैं। इसे इन्होंने द्वितीय दिक्स्थान (सेकेण्ड स्पेस) की संज्ञा दी है। कक्षा के अधिगम समुदाय में तीन प्रकार के विमर्शों का मिलन होता है– ज्ञानानुशासन आधारित विमर्श, विद्यालयी विषय के विमर्श और दैनंदिन विमर्श इनके मिलन से कक्षा में तृतीय दिक्स्थान (थर्ड स्पेस) या हाइब्रिड स्पेस का विकास होता है जो प्रथम दिक्स्थान (फर्स्ट स्पेस) और द्वितीय दिक्स्थान (सेकेण्ड स्पेस) के पारस्परिक अन्त:क्रिया से युक्त होता है। मोजे, चिकॉनोवस्की, क्रेमर, इलिस, कैरीलो और कोलॉजो (2004) के अनुसार हाइब्रिड स्पेस ऐसा अधिगम परिवेश होता है:

- जो शिक्षणशास्त्रीय दृष्टि से अनुपयोगी मानी जाने वाली ज्ञानराशि और विमर्शों को अकादमिक ज्ञानराशि और विमर्शों से जोड़ता है।
- यह एक सतत–प्रवाह का क्षेत्र है जो अपने सहभागियों को अनेक विमर्शों और अभ्यासकर्ताओं के समुदाय के साथ संवाद करने का सामर्थ्य और कौशल प्रदान करता है।
- यह कक्षा में आधिकारिक विद्यालयी पाठ्यचर्या (ऑफिशियल करीकुलम) को विस्तृत करता है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में प्रस्तुत अध्ययन यह पड़ताल करता है कि विद्यालय और विद्यालयेतर विमर्शों के बीच अंतराल को समाप्त करने के लिए कक्षा के अधिगम समुदाय में किस तरह से विद्यार्थियों के दैनंदिन विमर्शों का समावेश किया जाए? यह समावेशन किन प्रक्रियाओं द्वारा ज्ञान के सह–निर्माण को सुगम करता है? और कक्षा के कर्ताओं के संबंध को किस प्रकार प्रभावित करता है? अन्तत: सामाजिक विज्ञान के कक्षा विमर्श के संदर्भ, में इस अध्ययन के उद्देश्य हैं :

- सामाजिक विज्ञान की अवधारणाओं के विशेष संदर्भ में विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञान की व्याख्या करना।
- सामाजिक विज्ञान की कक्षा में विद्यार्थियों के कर्तृत्व (एजेंसी) को संपोषित करने वाले शिक्षणशास्त्रीय परिवेश को विकसित करना।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध कार्य गुणात्मक शोध विधियों द्वारा सम्पन्न किया गया है। इसमें घटनाओं, प्रक्रियाओं और परिवेश के कर्ताओं की अन्त:क्रियाओं को उनके स्वाभाविक अवलोकन की सहायता से ग्रहण किया जाय और समझा जाय। शोध विधियों और उपकरणों के चुनाव में इस आधारभूत तथ्य को ध्यान में रखा गया कि अनुभूत यथार्थ को अनुभूति करने वाले की दृष्टि और अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यक्त किया जाए (डेजिंन, 1989)। इस हेतु ऐसे उपकरणों का प्रयोग किया गया जिससे प्रतिभागी को अपने आप को अधिक से अधिक अभिव्यक्त करने का अवसर मिले जिससे उसके अनुभवों के प्रत्येक संभावित अर्थ को समझा जा सके। इस शोध के अभिकल्प में निम्नलिखित बिंदुओं का ध्यान रखा गया (डेजिंन और लिंकन, 2000, माइल्स और ह्यूबरमैन, 1994) :

- प्रत्येक घटना और प्रक्रिया को उसके सहभागी कर्ताओं की दृष्टि से देखा जाए।
- अध्ययन इकाई के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का गहन और समग्र विवेचन।
- संदर्भ के सापेक्ष घटनाओं और प्रक्रियाओं का मूल्यांकन।
- शोध अभिकल्प को लचीला और अर्द्ध संरचित रखा जाए जिससे क्षेत्र से प्राप्त अन्तर्दृष्टि के आधार पर उसमें अपेक्षित संशोधन हो सके।
- पूर्वानुमान और परिकल्पना के बजाए संकलन-विवेचन-विश्लेषण की सतत प्रक्रिया द्वारा निष्कर्ष प्राप्त किया जाये।
- अभ्यासकर्ता और सहभागियों के विचारों और दृष्टियों का सम्मान किया जाये।
- शोधकर्ता की व्यक्तिनिष्ठ दृष्टि, आग्रहों और पूर्वाग्रहों से शोध को यथासंभव मुक्त रखा जाये।

विद्यालय एवं प्रतिभागी

इस अध्ययन के लिए दिल्ली के उत्तरी जिले में स्थित एक सरकारी विद्यालय का चयन किया गया। इस विद्यालय का चयन सोद्देश्य था। प्रथम, इस विद्यालय के द्वारा सामाजिक विज्ञान की कक्षा में शिक्षण हस्तक्षेप के क्रियान्वयन की प्रशासनिक अनुमति प्राप्त थी। द्वितीय, इस विद्यालय की शिक्षिका ने भी स्वेच्छया इस अध्ययन में सहभागिता की इच्छा प्रकट की और स्वीकृति दी। बार्टन (2005) की भी यही स्थापना है कि शिक्षण नवाचार आधारित शोध कार्य उसी सह शिक्षक के साथ किए जाने चाहिए जो नवाचार को अपनाने के लिए इच्छुक हों। इस शिक्षणशास्त्रीय हस्तक्षेप का विकास और संपोषण

उक्त विद्यालय के कक्षा 8 में किया गया। इस कक्षा में कुल तीस विद्यार्थी थे। अधिकांश विद्यार्थी दिल्ली के बाहर के राज्यों से आए प्रवासी परिवारों से संबंधित थे। विद्यालयों में आठ लड़कियां और बाईस लड़के थे जिनका आयु प्रसार 14–16 वर्ष था। शिक्षिका द्वारा दी गयी सूचना के अनुसार कक्षा के चौदह विद्यार्थियों ने गरीबी रेखा से नीचे की आय का प्रमाण पत्र विद्यालय में जमा किया था। नौ विद्यार्थियों के अभिभावक दिल्ली विश्वविद्यालय में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी थे। छः विद्याथियों के अभिभावक सफाई कर्मचारी थे। आठ विद्यार्थियों के अभिभावक व्यवसायी थे। ये प्रायः फेरीवाले, ठेलेवाले या रेहड़ीवाले थे। सात विद्यालयों के अभिभावक प्राइवेट नौकरी में संलग्न थे। सत्रह विद्यार्थी कक्षा एक से इसी विद्यालय में सतत अध्ययनरत रहे थे। नौ विद्यार्थियों ने कक्षा छः में प्रवेश लिया था। तीन विद्यार्थी कक्षा सात में आये थे। एक विद्यार्थी ने कक्षा आठ में प्रवेश लिया था। इस विद्यालय में एक अप्रैल से प्रारंभ करके पन्द्रह मई 2014 के दौरान शिक्षण कार्य किया गया। शिक्षण कार्य का द्वितीय चरण एक जुलाई 2014 से सात अगस्त 2014 तक रहा। प्रत्येक कक्षा में शिक्षण के दौरान सहभागी अवलोकनकर्ता के रूप में शोधकर्ता उपस्थित रहा। कक्षा आरंभ होने के पूर्व शोधकर्ता स्टॉफ रूम में पहुँच जाता था। इस दौरान शिक्षिका के साथ शिक्षण योजना के क्रियान्वयन, पूर्व के कालांशों की घटनाओं पर चर्चा करता था। ये चर्चाएँ शिक्षिका के परिप्रेक्ष्य को जानने, शिक्षिका को शोधाकर्ता के परिप्रेक्ष्य से परिचित कराने के लिए महत्वपूर्ण रहीं।

आँकड़ों का संकलन

सहभागी अवलोकन

प्रत्येक कक्षा का सहभागी अवलोकन किया गया। इन अवलोकनों की ऑडियो रेकॉर्डिंग की गयी। सहभागी अवलोकन के दौरान क्षेत्र-पुस्तिका में आवश्यकतानुसार क्षेत्र टिप्पणियाँ दर्ज की गईं। कक्षा के उपरांत इन क्षेत्र-टिप्पणियों को पढ़कर इनमें रहे गए अंतराल को पूरा किया गया या इन टिप्पणियों से सम्बंधित विचारों को उसी समय अंकित कर दिया गया।

अर्द्ध संरचित साक्षात्कार

इस अध्ययन में आँकड़ों का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत शिक्षिका और विद्यार्थियों के साथ अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार था। कक्षा के उपरांत शिक्षिका के साथ स्टॉफ रूम में यह साक्षात्कार आयोजित किया जाता। इसमें कक्षा में की गयी गतिविधि के आकलन, इससे जुड़े सुझाव, हम दोनों की विकसित साझी समझ, कक्षा में विद्यार्थियों के साथ हमारे

संबंध के विषय में सवाल जवाब का लगभग 15–20 मिनट का सत्र होता था। प्रत्येक सत्र की ऑडियो रेकार्डिंग की गयी। इसी प्रकार मध्याह्न भोजन और खेल के कालांशों में कक्षा के उपलब्ध विद्यार्थियों में से कुछ का वैयक्तिक साक्षात्कार किया गया। इस साक्षात्कार में कक्षा में चर्चित विषयवस्तु, कक्षा में की गयी गतिविधि, उनके निजी अनुभव, कक्षा की अध्ययन विधि के विषय में विचार और सुझावों पर प्रश्न पूछे गए। इन्हें भी ऑडियो रेकॉर्ड किया गया। इसके अलावा इसी कक्षा के छात्र प्रात:कालीन सभा या किसी अन्य कालांश में उपलब्धतानुसार मिल जाते और चर्चा की इच्छा व्यक्त करते तो उनसे कक्षा में की जा रही गतिविधियों से संबंधित अनौपचारिक बातचीत की गयी। इस प्रकार की चर्चा को क्षेत्र–पुस्तिका में दर्ज किया गया।

प्रतीक-संकलन

कक्षा शिक्षण के दौरान शिक्षार्थियों को दिए गए प्रपत्र, लेखन पुस्तिका, गृहकार्य, विद्यार्थियों द्वारा निर्मित उपकरणों आदि का संकलन भी किया गया। इन्हें आँकड़ों के द्वितीयक स्रोतों के रूप में प्रयुक्त किया गया।

आँकड़ों का विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में एक शिक्षण शास्त्रीय हस्तक्षेप की व्याख्या करना था इसलिए शिक्षणशास्त्री हस्तक्षेप के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए विश्लेषण की योजना बनाई गयी। इसमें ग्लेसर और स्ट्रास (1967) द्वारा बताई गयी सतत तुलना विधि का प्रयोग किया गया। आंकड़ों के विश्लेषण के दौरान कक्षा विमर्श में सम्प्रेषण की विषेशताओं, अंत:क्रिया के पैटर्न और कक्षा में विषय वस्तु की प्रस्तुति को ध्यान में रखा गया। शोध के परिणामों को व्यक्त करने के लिए आख्यान को एक विधा के रूप में चुना गया क्योंकि यह दर्शाता है कि शोध परिणाम एक सामाजिक–सांस्कृतिक निर्मिति है जो अभ्यास क्षेत्र में प्रतिभागियों की अभ्यास क्रिया और विचार से पैदा हुई है (पैकवुड और साईक्स 1996)। आख्यान के रूप में प्रस्तुति देशकाल (स्टेनले और वाईल्स 1993) और प्रक्रियात्मक संदर्भो को भी संप्रेषित करती है (टोबिन और मैकरॉबी 1996) और विवेचक के रूप में शोधकर्ता की संलग्नता को भी दर्शाती है (ब्रूनर, 1990)।

निष्कर्ष

विद्यालयेतर विमर्श : प्रकृति, प्रक्रिया और प्रभाव

विद्यार्थियों के विद्यालयेतर परिवेश के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विद्यालयी विमर्शों के अतिरिक्त ये विद्यार्थी परिवार, समुदाय, हम उम्र साथियों के समूह और लोकप्रिय प्रचार

माध्यमों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहभागिता द्वारा सामाजिक यथार्थ के अर्थ को निर्मित करते हैं। विद्यार्थी द्वारा इन परिवेशों में सक्रिय सहभागिता, सतत संचरण और अन्तरवैयक्तिक व अन्तरावैयक्तिक संवाद के फलस्वरूप संस्कृति, उनके संज्ञान और पहचान का हिस्सा बनती है जो उनके विचार, व्यवहार व क्रिया को निर्देशित करती है।

विद्यालयेतर परिवेश में विद्यार्थी परिवार के सदस्यों के साथ संयुक्त सहभागी गतिविधियों में भाग लेते हैं। यहाँ उनकी भूमिका सहभागी अवलोकन कर्ता की होती है। उन्हें घर के कार्यों को करने के लिए निर्देशित सहयोग (गाइडेड पार्टीशिपेशन) और स्वतंत्र जिम्मेदारी प्रदान की गयी है। वे अभिभावक की भूमिका में भी हैं। यह भूमिका केवल भाई-बहनों के देख-भाल तक सीमित नहीं है बल्कि वे उनके विद्यालयी कार्यों का निरीक्षण और संभव सहयोग भी प्रदान करते हैं। ऐसे अवसरों पर वे विद्यालयेतर परिवेश में विद्यालयी विमर्शों के संवाहक की भूमिका निभाते हैं। परिवार के सांस्कृतिक उत्सव और रीति-रिवाजों में भागीदारी उन्हें उस लोक परंपरा से परिचित कराती है जो परिवार के सांस्कृतिक इतिहास का हिस्सा है। इसी तरह वे परिवार के प्रतिनिधि के रूप में सामुदायिक गतिविधियों में सहभागिता करते हैं। वे आर्थिक गतिविधियों में उपभोक्ता, सेवा प्रदाता और व्यावसायिक सहयोगी हैं। सामुदायिक आयोजनों और बैठकों के अवलोकन द्वारा वे उन सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक दृष्टियों को जान रहे हैं जो उनके समुदाय में सामूहिक निर्णयों को प्रभावित करती है। उनके हम उम्र साथियों का समूह भी विविधता भरा है। जब वे अपने समान सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले साथियों के साथ संलग्न हैं तो परिवार की चिंताओं, भविष्य की आकांक्षाएँ और मनोरंजन की गतिविधियाँ उनकी प्राथमिकता हैं। दूसरी ओर जब वे अभिजन वर्गीय मित्रों के साथ संलग्न हैं तो अपने हैसियत और अपने मित्र की हैसियत में अंतर के कारण और प्रभाव का प्रत्यक्षण कर रहे हैं। विद्यालय के बाहर ट्यूटर और अभिभावकों के नियोक्ता विद्यालयी संस्कृति के प्रतीक और उत्पाद के रूप में उपस्थित हैं जिन्हें विद्यार्थी सलाहकार और रोल मॉडल की भूमिका में देख रहे हैं। लोकप्रिय प्रचार माध्यमों ने विद्यार्थियों को 'वर्चुअल दुनिया' का सहभागी बना दिया है जो उन्हें सूचना के अथाह संसार से परिचित करा रहा है। इस दुनिया में जोड़-तोड़ करने की कुशलता का विकास उनके लिए भावी संभावनाओं का क्षेत्र बन कर उभर रहा है। यह दुनिया प्रचार और दुष्प्रचार के माध्यम से उनके मत निर्माण में भी भूमिका निभा रही है। इन समस्त परिवेशों के सहभागी की भूमिका में विद्यार्थी एक व्यस्त दिनचर्या जीते हैं जिसमें सर्वाधिक अधिमान वे विद्यालयी विमर्श को देते हैं। विद्यालयी अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए वे अपने संदर्भ विशेष की भूमिकाओं और गतिविधियों

में संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं। इसीलिए तो वे जब पिता के साथ दुकान पर बैठते हैं तो गृहकार्य पूरा कर लेते हैं। जब ट्यूशन के लिए जाते हैं तो बाजार का काम भी पूरा करके आते हैं। जब खुद पढ़ने बैठते हैं तो अपने भाई-बहनों को भी पढ़ने के लिए बैठने को कहते हैं। इन सभी संदर्भों में विद्यार्थियों और उनके परिवेश के बीच के संबंधों को यदि सत्ता आधारित संबंध के प्रारूप में देखें तो निम्नलिखित प्रारूप दृष्टिगोचर होते हैं:

वयस्क और बच्चे का संबंध, जहाँ बच्चे होने के प्रभाव स्वरूप विद्यार्थी अपने अभिभावकों, परिवार और समुदाय के अन्य वयस्कों के द्वारा बताये तथ्यों, दी गयी सूचनाओं पर विश्वास करते हैं। वे उनका अनुकरण करते हैं। वे वयस्कों का प्रतिरोध नहीं करते और मानते हैं कि वयस्क उनके हित में फैसला लेते हैं। बड़े-भाई बहन के दायित्व में वे वयस्कों की इसी भूमिका का निर्वहन भी करते हैं। वयस्क और बच्चे के संबंध की व्यापक स्वीकार्यता के कारण विद्यार्थी विद्यालय में शिक्षक को भी एक वयस्क मानते हैं और उसी प्रकार का मान्य व्यवहार करते हैं जिस प्रकार से उनकी संस्कृति में एक वयस्क से व्यवहार करने का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

उत्पादक और उपभोक्ता के संबंध-प्रारूप में वे स्वतंत्र कर्ता हैं और निगोशिएशन के द्वारा अपने और अपने परिवार के सामाजिक और आर्थिक हितों की रक्षा करते हैं। उदाहरणत: वे उत्पादित वस्तु और श्रम के मूल्य निर्धारण में मोल-भाव करने, श्रम के विभाजन और नियोजन में स्वतंत्र निर्णय लेते हैं। इन भूमिकाओं में दक्षता के कारण उन्हें कई बार स्वतंत्र दायित्व भी प्रदान किया जाता है।

हम उम्र साथियों के साथ समान शक्ति संबंध प्रारूप में वे अपने जैसे अन्य साथियों के साथ अनुभवों को साझा करते हैं, उनके विचारों की आलोचना करते हैं। नई पहल और निजी समस्याओं आदि पर चर्चा करते हैं। उल्लेखनीय है इन अन्त:क्रियाओं में हम उम्र साथियों के सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में अंतर का अवलोकन किया गया लेकिन इसका अन्त:क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं था।

उक्त सत्तासूचक संबंधों के अतिरिक्त ज्ञाननिर्माता की भूमिका को दर्शाने वाले निम्नलिखित संबंध प्रारूप देखे गए:

प्रत्यक्ष अवलोकन और अप्रत्यक्ष अधिगमकर्ता का संबंध, जहाँ वे समुदाय के संदर्भों के सचेत अवलोकनकर्त्ता हैं। इस भूमिका में वे एक प्रशिक्षु (Novice) की तरह अभ्यास और विचार के उपकरणों को अपनाते हैं। यहाँ उनके द्वारा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप की संभावना न्यूनतम रहती है। इस संबंध में मतारोपण की भी प्रवृत्ति होती है।

जानने वाले और करने वाले का संबंध प्रारूप, इसके अन्तर्गत विद्यार्थी अभ्यास द्वारा, प्रयत्न और भूल द्वारा कार्यात्मक ज्ञान को अर्जित करते हैं। वे जिन वयस्कों के साथ सहभागिता करते हैं, वे स्वतंत्र अभ्यास द्वारा सीखने के लिए निर्देशित करते हैं। इस प्रकार निर्मित ज्ञान कार्यात्मक होता है जो रोजमर्रा की समस्याओं के समाधान में उपयोग किया जाता है। वे 'कैसे करते हैं?' का उत्तर देने में सक्षम होते हैं लेकिन 'क्यों करते हैं?' का उत्तर विश्वास, धारणाओं और चलन के सापेक्ष देते हैं।

विद्यालयेतर परिवेश में जानने, करने और मनन के अवसर

प्रस्तुत अध्ययन में पाया गया कि विद्यालयेतर गतिविधियों में सहभागिता विद्यार्थियों को सामाजिक यथार्थ का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करती है। वे अन्य सहभागियों की गतिविधियों का प्रत्यक्षण करते हैं। इसके आधार पर अपने और अन्य सहभागियों के विचार और व्यवहार के संबंध में भविष्य कथन करते हैं। अन्य सहभागियों द्वारा साझा किए गए अनुभवों के आधार पर अपने निर्णय लेते हैं और उनसे पारस्परिक तुलना करते हैं। अपने परिवेश के भौतिक संसाधनों के दृश्य गुणों के आधार पर उनकी प्रकृति और विशेषताओं को पहचानते हैं। लोक संस्कृति और परंपरा में भौतिक दुनिया के संदर्भ में व्याप्त विश्वासों को ग्रहण करते हैं। वे कुशलता आधारित कार्यों के लिए अभ्यास और पुनरावृत्ति को अपनाते हैं। वे स्वतंत्र रूप से अनेक क्रियाकलापों की योजना भी बनाते हैं जिसमें समूह के अन्य भागीदारों द्वारा उनकी जवाबदेही तय की जाती है। यह पाया गया कि विद्यालयेतर विमर्श में सोद्देश्य अनुदेशन का अभाव होता है लेकिन वे भागीदार (जैसे-ट्यूटर, भाई-बहन, हम उम्र साथी) जो विद्यालयी विमर्शों से परिचित है, विद्यालय में होने वाली गतिविधियों जैसे- वर्तनी पूछना, गृहकार्य पूरे करना, सुलेख लिखना आदि के अभ्यास पर बल देते हैं। वे समुदाय की गतिविधियों के अवलोकन, इनकी चर्चाओं के श्रवण द्वारा समुदाय में स्वीकार्य और वैध विचारों, मतों और धारणाओं को जानते हैं। अत: आवश्यक नहीं है कि विद्यार्थी प्रत्येक अभ्यास में प्रत्यक्ष सहभागिता करें, वे अवलोकनकर्ता की भूमिका में भी अर्थ निर्मित करते हैं। विद्यालयतेर परिवेश में उन्हें समूह में कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है। इस समूह की संरचना में वे किसी वयस्क के साथ कार्य कर सकते हैं और हम उम्र साथियों के साथ भी। समूह में वे सक्रिय निर्णय करने वाले होते हैं और अनुगमनकर्ता भी। उनका प्रदर्शन उनके आकलन का आधार होता है। यह भी पाया गया कि वे खुद की पहल द्वारा समस्या विश्लेषण

(डाइगनोज) और समस्या समाधान करते हैं। इस हेतु वे विभिन्न संदर्भों के अनुभवों को जोड़ते हुए विचार करते हैं। उपर्युक्त वर्णित संज्ञानात्मक सक्रियता विद्यार्थियों के दैनंदिन विमर्श के रूप में संचित, निर्मित और विकसित होती रहती है जो उनके आनुभविक और कार्यात्मक ज्ञान का आधार बनती है। इसके माध्यम से वे सामाजिक घटनाओं एवं प्रक्रियाओं के प्रति परिप्रेक्ष्य का विकास करते हैं। प्रस्तुत कार्य विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञान की अनेक विशेषताओं को पहचानता है जिसे तालिका–1 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 1: विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञान की विशेषताएं

विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञान की विशेषताएं	
सांस्कृतिक विश्वास और लोक मान्यताएं	*'गंगा नदी हमारी माँ है।'* *'गंगा नदी शिव के बालों से निकली है, वह पापों को धुलती है।'* *'छठ पूजा से बेटा पैदा होता है।'* *'नौकरी करो तो सरकार की हल चलाओ तो बाप का।'*
वैकल्पिक अवधारणाएं	*'बारिश टेढ़ी रेखा में होती है क्योंकि गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के कारण पृथ्वी उसे खींच लेती है।'* *'मानव, पर्यावरण में है लेकिन पर्यावरण नहीं है।'* *'बारिश के बाद ढेर सारा पानी जो बहता है वह नदी बन जाता है। यह पानी पहाड़ों से आता है।'*
संदर्भ आधारित विशेषताओं का वर्णन और व्याख्या	*'पटेल चेस्ट की गली में जितनी भी दुकानें है सब मिलकर काम करती है। वहाँ ज्यादा दुकानें है इसलिए कॉलेज वालों को पता है कि वहाँ जाने से काम हो जाएगा। आपस में लड़ाई न हो इसलिए सब दुकानो पर रेट बराबर रहता है।'* *'जो लोग कोठी में रहते हैं, उनके पास बड़ी कारें जैसे कि मर्सिडीज होते हैं, फ्लैट में रहने वालों के पास मारूति होती है और बस्ती और झुग्गी में रहने वालों के पास स्कूटर और बाइक होती है।'* *'झुग्गी जिनकी होती है उनकी जमीन नहीं होती है। उन्हें सरकार कभी भी बेदखल कर सकती है।'*

क्रमशः

बोलचाल की शब्दावली का प्रयोग	चट्टान के लिए 'पत्थर' गन्ने के लिए 'ऊख' आँगन के लिए 'दुआर' वाष्प के लिए 'भाप' प्रवास के लिए 'बाहर से आकर बस जाना' उद्योग के लिए 'फैक्ट्री'
पूर्वाग्रह	*'मुस्लिम से दोस्ती नहीं करना चाहिए।'* *'बिहारी चावल खाते हैं।'* *'पहाड़ी नक-चिपटे होते हैं।'* *'खेती एक ऐसा कार्य जो तब किया जाता है जब कोई और काम न हो।'* *'किसान पढ़े-लिखे नहीं होते।'* *'पंचायत की बैठक में 'सब लोग' नहीं जाते हैं, केवल 'साख' वाले लोग हैं जो बैठक में जाते हैं।'*
सामाजिक रूढ़ियाँ	*'जमनापार अच्छी जगह नहीं है।'* *'विकास उनका होता जो धनी हैं और पढ़े लिखे हैं।'* *'गाँव वाले इस पानी को साफ नहीं करते क्योंकि उन्हें पानी साफ करने का तरीका पता नहीं होता।'* *'ऊँची जाति के लोग अमीर होते हैं। वे लोग खेती नहीं करते, खेती का काम नीची जाति के लोग करते हैं।'*
सामाजिक यथार्थ	*'जिसके पास खेत होता है वह खेती नहीं करता। उन्हीं के खेतों को वे लोग जोतते-बोते है जिनके पास खेत नहीं होता।'* 'जैसे जो अच्छी नौकरी करते हैं, वे ज्यादा पैसे कमाते हैं और जमीन खरीदते हैं।' 'सरकार घर बनाकर देने का वादा करती है लेकिन देती नहीं। झुग्गी वाले चाहते हैं उनकी झुग्गी को एम.सी.डी. मान ले जिससे उन्हें भी सुविधा मिलने लगे।'

क्रमशः

दैनिक अवलोकन के आधार पर भविष्य कथन	*'शुरू में मान लो कि दो लोग है। दोनों के पास जमीन बराबर है लेकिन एक को चार बेटे हुए और एक को एक ही बेटा हुआ। अब जिसके चार बेटे हुए उसके पास जमीन कम हो जाएगी और जिसके पास एक है उसके पास ज्यादा हो जाएगी।'*
विद्यालयी ज्ञान का संदर्भ	*'दुनिया को पर्यावरण चारों तरफ से घेरे हुए हैं।'* *'गाँव में एम.सी.डी. नहीं होती लेकिन वहाँ पंचायत होती है। विकास करने के लिए सरकार योजनाएं बनाती है। जैसे- स्कूल में मिड डे मिल देना, लाडली योजना अस्पताल बनाना, स्कूल खोलना।*
व्यक्तिगत अनुभव	*जब गाँव में खेतों का बँटवारा हुआ तो मेरे पिता के हिस्से कम खेत आया तब उन्हें नौकरी करने के लिए शहर आना पड़ा।'*

कक्षा में क्रियान्वित शिक्षणशास्त्रीय हस्तक्षेप : प्रक्रिया और प्रभाव

जैसा कि विद्यालयेतर परिवेश के अध्ययन से स्पष्ट है कि विद्यार्थियों के पास अपार दैनंदिन ज्ञानराशि है जो यद्यपि विद्यालयी ज्ञान के सदृश परिष्कृत नहीं है लेकिन यह कार्यात्मक ज्ञान रोजमर्रा की अन्त:क्रियाओं में निगोशिएसन का उपकरण है। विद्यालय सदृश समस्याओं और परिस्थितियों के अतिरिक्त विद्यार्थी इसी दैनंदिन ज्ञान का प्रयोग करते हैं। अत: विद्यालयी ज्ञान और दैनंदिन ज्ञान का सहअस्तित्व रहता है। यह सह अस्तित्व एक संभाव्य संसाधन है जिसे शिक्षण में प्रयुक्त करके विषय वैविध्य, कर्तृत्व संवर्धन और व्यापक विश्वदृष्टि के उद्देश्य को पूर्ण किया जा सकता है। इस पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोधकार्य दैनंदिन विमर्श और विद्यालयी विमर्श पारस्परिकता के पक्ष को स्थापित करता है। हाशिए के समुदाय से आने वाले विद्यार्थियों के अनुभव वैविध्य को संज्ञान में लेते हुए एक शिक्षण शास्त्रीय परिवेश का विकास किया गया जो विद्यालय और विद्यालयेतर विमर्शों के बीच अलगाव को समाप्त करने के लिए लक्षित था।

इस अध्ययन के लिए चयनित विद्यालय और संबंधित कक्षा में सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम 'संसाधन और विकास' से तीन इकाईयों का चयन किया गया। ये इकाइयां संसाधन, कृषि और मानव संसाधन थी। ये इकाइयाँ मुख्यत: भूगोल विषय की हैं और शोधकर्ता की अकादमिक पृष्ठभूमि से तादात्म्य रखती हैं, इसीलिए इनका चुनाव किया

गया। प्रत्येक इकाई के शिक्षण हेतु क्रियाकलापों का विकास किया गया। इनकी रूपरेखा को विषय विशेषज्ञों, साथी शोधकर्ताओं और साथी शिक्षिका के साथ साझा किया गया। इनके सुझावों के अनुरूप क्रियाकलापों को संशोधित कर कक्षा में क्रियान्वित किया गया। कक्षा में कराये गये क्रियाकलापों की इकाईवार सूची तालिका–2 में दी गयी है।

तालिका–2 : कक्षा में करायी गयी गतिविधियों की इकाईवार सूची

इकाई	क्रियाकलाप
इकाई 1: संसाधन	• दैनंदिन जीवन में संसाधनों को पहचानना • संसाधनों का उनकी मूल्य और उपयोगिता के आधार पर वर्गीकरण • दैनिक जीवन में प्रयुक्त संसाधनों का वर्गीकरण • समुदाय में जल की समस्या का अध्ययन
इकाई 2: कृषि	• एक चुनी हुई फसल की खेती कैसे करेंगे? • एक किसान का आख्यान • क्या किसानों को खेती करना छोड़ देना चाहिए?
इकाई 3: मानव संसाधन	• जनगणना के लिए प्रश्नावली का निर्माण • परिवार के मौखिक इतिहास का पता लगाना • अपने परिवेश में मानव संसाधन की पहचान और विकास की योजना

इस शिक्षण परिवेश की प्रक्रियागत विशेषताओं को तालिका–3 में प्रस्तुत किया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि कक्षा में दैनंदिन ज्ञान और विद्यालयी ज्ञान के माध्यम से विद्यार्थियों की संलग्नता, शिक्षक–छात्र, छात्र–छात्र के बीच सतत संवाद ने 'कल्चर ऑफ इन्क्वायरी' का पोषण किया। शिक्षक ने कक्षा को नियंत्रित करने की अपेक्षा कक्षा को निर्णय की प्रक्रिया का भागीदार बनाया। विद्यार्थियों को कक्षा कार्य का दायित्व सौंपा और विद्यार्थियों ने इसका निर्वहन किया। कक्षा की सामाजिक संरचना में शिक्षक के अधिनायकत्व के बदले लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लक्षण देखने को मिले। कक्षा की यह लोकतांत्रिक संरचना शिक्षक–छात्र, छात्र–छात्र और छात्र–अधिगम सामग्री के बीच एकदिशी और सत्ता आधारित सम्बन्ध को बदलने का सामर्थ्य रखती है (शोर और फ्रेरे, 1987)।

यह पाया गया कि अधिगमकर्ताओं ने स्वंय को निर्णयकर्ता, समस्या प्रस्तावक और लोकतांत्रिक विमर्श के सहभागी के रुप में देखा जहाँ उनके विचारों और प्रतिक्रियाओं को पूरा सम्मान मिलता है।

तालिका-3: शिक्षणशास्त्रीय परिवेश की प्रक्रियागत विशेषताएं

अन्वेषणगर्भी परिवेश	• शिक्षक द्वारा प्रामाणिक गतिविधियों (अथेनटिक एक्टिविटी) का आयोजन • संरचित, अर्द्धसंरचित और असंरचित गतिविधियों का प्रयोग • वैयक्तिक स्तर पर समस्या समाधान में संलग्नता • समूह में समस्या समाधान में संलग्नता • समस्या समाधान के लिए विकसित प्रक्रिया के चरणों की औचित्य प्रस्तुति • विद्यालयेतर परिवेश के अवलोकनों को कक्षा की विषय सामग्री बनाना • विद्यालयेतर परिवेश से आँकड़े इकट्ठा करना और उसे कक्षा विमर्श की सामग्री बनाना
शिक्षण और विद्यार्थियों के संदर्भ में संगति	• विद्यार्थियों के परिवार व समुदाय के संदर्भानुसार उदाहरण प्रस्तुति • विद्यार्थियों की रोजमर्रा की भाषा में विचार अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करना • स्थानीय परिवेश से संबंधित समसामयिक मुद्दों का समावेश • गृहकार्य और कक्षाकार्य के माध्यम से विद्यालयेतर परिवेश और विद्यालयी परिवेश के बीच संबंध संवर्धन
शिक्षक : कक्षा-विमर्श का सुगमकर्ता	• कक्षा की जिज्ञासा को प्रश्न द्वारा पोषित करना। • विद्यार्थियों के बीच पारस्परिक संवाद को पोषित करना। • रोजमर्रा की भाषा और शब्दावली का आभार मानना। • अकादमिक भाषा और शब्दावली से परिचित करना। • अकादमिक भाषा और दैनंदिन भाषा के बीच अंतर को रेखांकित करना। • सामाजिक विज्ञान को सीखना और सामाजिक विज्ञान के बारे में सीखना।

क्रमश:

कक्षा के मानक	• कक्षा में एक अधिगम–समुदाय के सदस्य के रूप में सहभागिता करना। • यह स्वीकारना कि प्रत्येक सदस्य के विचार महत्वपूर्ण हैं और उन्हें साझा करने का अवसर प्रदान करना। • दूसरों के विचारों को जानना, इसे अपने विचारों से जोड़ना, सहमति, असहमति, जिज्ञासा, विस्तार संगति, असंगति खोजना, स्पष्टीकरण मांगना। • विचार के समर्थन में सूचना, प्रमाण, तर्क आदि प्रस्तुत करना। • किसी विचार विशेष पर दृढ़ न होना। • दूसरे के विचारों के लिए खुलापन। • समूह में कार्य करते हुए ध्यान रखाना कि सभी सदस्यों के विचार सम्मिलित हुए हों। • समूह के अन्य सदस्यों की मदद करना

तालिका–3 में जिन प्रक्रियात्मक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है उसके फलस्वरूप कक्षा शिक्षण के निम्नलिखित लक्षण प्रकट हुए :

पुस्तकीय ज्ञान से संदर्भ-स्थापित ज्ञान की ओर

भारतीय विद्यालयों की कक्षा–संस्कृति की सीमाओं का उल्लेख करते हुए इसे प्राय: पुस्तक केन्द्रित ठहराया गया है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण के संदर्भ में यह अभिलक्षण अधिक प्रयुक्त हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन में यह संभावना परिलक्षित हुई कि कक्षागत सीखने की प्रक्रियाओं को इस प्रकार से भी विकसित किया जा सकता है कि वह पुस्तक केन्द्रित न होकर विद्यार्थी के सामाजिक संदर्भ में स्थापित हो। पुस्तक केन्द्रित कक्षा–संस्कृति में प्राय: पुस्तकें पाठ्यचर्या का समानार्थी माना जाता है। इस अध्ययन में पाठ्यचर्या को पुस्तक का समरूप न मानकर विद्यार्थियों के अधिगम अनुभव के लिए एक प्रस्तावित ढाँचा और उपकरण माना गया। इसके लिए कक्षा में पाठ्यचर्या के अनुभव के लिए विद्यालय में जानने, करने और सोचने के तरीकों के साथ उन तरीकों को स्थान दिया गया जिनका उपयोग विद्यार्थी अपने परिवेश में सहज भाव से करते हैं। इस मान्यता के साथ सीखने के क्रियाकलापों का विकास इस प्रकार किया गया कि वे विद्यार्थी के संदर्भजनित ज्ञान और अनुभव को कक्षा में आमंत्रित करें। उल्लेखनीय है कि इस प्रक्रिया में पुस्तक

के महत्व को नकारा नहीं गया। पुस्तकें ज्ञान का स्त्रोत रहीं लेकिन वह एकमात्र स्त्रोत नहीं थीं। विद्यार्थियों ने समझा कि पुस्तक ऐसा संदर्भ स्त्रोत है जिसका विस्तार संभव है, जिस पर प्रश्न भी उठाया जा सकता है और जिनके माध्यम से अपने विचार या धारणा पर पुनर्विचार किया जा सकता है। जैसे-इकाई-1 के शिक्षण के दौरान विद्यार्थियों ने मनोरम दृश्य भूमि और लोकगीत को मूल्यवान संसाधन बताया जबकि पुस्तक के अनुसार ये दोनों संसाधन में शामिल नहीं थे। इसी प्रकार इकाई दो में फसलों को उगाने की दशाओं की सूची विद्यार्थियों ने अपने दैनंदिन ज्ञान के मदद से तैयार की लेकिन फसलों का राज्यवार वितरण जानने के लिए पाठ्यपुस्तक का संदर्भ लिया।

विद्यार्थियों के अनुभवों को कक्षा में पूर्वज्ञान की तरह नहीं देखा गया जिसका केवल पाठ की प्रस्तावना के लिए प्रयोग किया जाए बल्कि इसे कक्षा में सतत संवाद का माध्यम बनाया गया। इसका श्रेय कक्षा में कराये गए क्रियाकलापों को जाता है। कक्षा के क्रियाकलाप पाठ्यचर्या के अनुसार ऐसी अधिगम-समस्या के रूप में विकसित किए गए जो वास्तविक समस्या के समतुल्य थे। इकाई-1 में अपने दैनंदिन जीवन से किसी ऐसे संसाधन को पहचानने के लिए कहा गया जिसके संरक्षण की आवश्यकता हो। इसी प्रकार इन वास्तविक समस्याओं पर एक समाज वैज्ञानिक की तरह विचार करने का अवसर दिया गया। उदाहरणार्थ उक्त अधिगम समस्या में यह भी जोड़ा गया कि वे संसाधन के संरक्षण के उपाय और तरीको को खोजें और सुझाएं। इकाई-2 में उन्हें कृषि के भौगोलिक और आर्थिक पक्ष के साथ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष को संज्ञान में लेने का अवसर दिया गया। इन क्रियाकलापों में उनके परिवेश की घटनाओं और प्रक्रियाओं के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनुभवों को जानने का माध्यम बनाया गया। इस प्रक्रिया में विद्यार्थियों ने सामाजिक विज्ञान की भाषा और विधियों को भी सीखा।

पुस्तक आधारित कक्षा-संस्कृति में लिखित कार्यों पर अधिक बल रहता है। प्रस्तुत अध्ययन में विद्यार्थियों ने लिखित, मौखिक, सामूहिक प्रस्तुति, वैयक्तिक प्रस्तुति, रचनात्मक लेखन और सृजन की विधाओं द्वारा कक्षा अनुभवों के भागीदार बने। इकाई-1 में संसाधन-संरक्षण के क्रियाकलाप में विद्यार्थियों की लिखित प्रस्तुति प्रश्न-उत्तर लेखन न होकर विचारों की प्रस्तुति और साझा करने की थी। इसी प्रकार इकाई दो में किसान के दिनचर्या का आख्यान लेखन उन्हें अपने विचारों को कक्षा-चर्चा को व्यवस्थित करने के लिए आधार प्रदान करता है। कक्षान्तर्गत गतिविधियों में विद्यार्थियों की भागीदारी एक समाज वैज्ञानिक सरीखी थी जो अपने परिवेश की सामाजिक प्रक्रियाओं को जानने के लिए परिवेश के कर्ताओं-परिवार और समुदाय के सदस्य से आदि के साथ संवाद कर

रहा है। इस जानकारी पर विचार करने के लिए विषय विशेषज्ञों–शिक्षिका व शोधकर्ता से चर्चा की गई और समाज वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित ज्ञान के लिखित दस्तावेज के रूप में पाठ्यपुस्तक का संदर्भ लिया गया है।

वैयक्तिक संज्ञान से वितरित और सहभागी (Distributed and shared) संज्ञान की ओर

कक्षा में सीखने को वैयक्तिक संज्ञान को संवर्धित करने की प्रक्रिया माना जाता है। ऐसी कक्षाओं में एक दूसरे से अच्छा प्रदर्शन करने की होड़ मची रहती है और वैयक्तिक उपलब्धि को प्रोत्साहित किया जाता है। इसका प्रमाण अध्ययन–2 के वृत्त अध्ययन में देखा जा सकता है जहाँ दोनों विद्यालयों के शिक्षकों ने 'अपना काम करना', 'अपनी किताब पढ़ना', और 'कक्षा में बात न करना' जैसे मानकों को स्थापित और पोषित किया था। कक्षा–संस्कृति की यह प्रवृत्ति कक्षा में विविधता और उसके शिक्षणशास्त्रीय निहितार्थ की उपेक्षा कर देती है। दैनंदिन ज्ञान और विद्यालयी ज्ञान की पारस्परिकता ने कक्षा में वैयक्तिक संज्ञान संवर्धन के बदले वितरित और सहभागी संज्ञान द्वारा अर्थ–निर्माण का पोषण किया। इस पहल का प्रमाण विद्यार्थियों की प्रस्तुतियों में देखा जा सकता है जहाँ वे 'मैं' के बदले 'हम' सर्वनाम का प्रयोग करते हुए समूह की सहमति से निर्मित विचार को साझा किया। शोधकर्ता द्वारा सप्रयास कक्षा को संबोधित करने के दौरान 'मैं' और 'तुम' सर्वनामों के बदले 'हम' सर्वनाम का प्रयोग किया गया। यह प्रयास शिक्षिका की ओर से भी हुआ। इन प्रयोगों से शिक्षिका और शोधकर्ता, दोनों ने अपनी छवि को ज्ञान के सह–निर्माता के रूप में प्रस्तुत किया और विद्यार्थियों में भी सामूहिकता का संदेश दिया। द्रष्टव्य रहा कि इकाई–1 में विद्यार्थियों ने वैयक्तिक अधिगम की प्रवृत्ति दिखायी और समूह कार्यों के प्रति अन्यमनस्क दिखें लेकिन इन्हीं विद्यार्थियों को जब इकाई–3 में शिक्षणशास्त्रीय युक्ति की योजना बनाने का प्रस्ताव दिया गया तो उन्होंने समूह कार्य का ही प्रस्ताव किया। सामूहिक संज्ञान को प्रेरित करने के लिए विद्यार्थियों के बीच पारस्परिक संवाद को प्रोत्साहित किया गया। प्रारंभ में शिक्षक को विद्यार्थियों के बीच परस्पर संवाद में मध्यस्थता करनी पड़ी लेकिन बाद के क्रियाकलापों में शिक्षक की इस भूमिका की आवृत्ति कम हुईं कक्षा में ऐसे सामाजिक मानक स्थापित हुए जिसके अन्तर्गत कक्षा का प्रत्येक सहभागी कक्षा में प्रस्तुत किसी भी विचार से सम्बंधित सूचना, स्पष्टीकरण, प्रमाण, औचित्य की माँग कर सकता है। उदाहरण के लिए बागानी खेती की चर्चा के दौरान विद्यार्थियों ने प्रस्तोता के अनुभव को स्वीकार किया और उसका विस्तार करते हुए उसमें अपना अनुभव जोड़ा। एक विद्यार्थी जो ग्रामीण परिवेश

से नहीं थी उसने स्वाभाविक जिज्ञासा प्रकट की कि क्या अमरूद और करौंदे के बाग साथ-साथ होते हैं? इसी प्रकार किसान के आख्यान की चर्चा के दौरान कृषि भूमि के बँटवारें पर प्रस्तोता विद्यार्थी के समर्थन में अन्य विद्यार्थी भी आए। विद्यार्थियों ने साथी विद्यार्थियों के विचारों पर प्रश्न भी किया। जैसे-संसाधन संरक्षण के दौरान जब एक विद्यार्थी ने मोमबत्ती के द्वारा मोम संरक्षण का विचार दिया तो एक अन्य विद्यार्थी ने औचित्य पर प्रश्न उठाते हुए कहा कि लेकिन मोमबत्ती का प्रयोग दीपावली के अतिरिक्त बहुत कम होता है। ऐसे ही प्रवसन के मौखिक इतिहास पर एक विद्यार्थी अन्य प्रस्तोताओं से असहमति व्यक्त करते हुए पूछा कि मैं दिल्ली में पैदा हुई हूँ तो क्या मैं भी प्रवासी हूँ? ये उद्धरण वितरित और सहभागी संज्ञान के प्रमाण को प्रस्तुत करते हैं। अत: कक्षा-संस्कृति का विकास इस प्रकार से किया गया कि लघु समूह में चर्चा करके एक आम सहमति पर पहुँचने का अभ्यास करने का मौका दिया जा सके। इन कार्यों में विद्यार्थियों ने किसी एक के विचार को स्वीकार करने के बजाय अपने-अपने मतों से समझौता किया और अन्तत: समूह के विचार का निर्माण किया। समूह के प्रत्येक सदस्य ने इस विचार को अपनाया और उसका दायित्व स्वीकार किया। उदाहरण के लिए संसाधन संरक्षण की समस्या पर लघु समूह में कार्य करने के दौरान समूह के प्रत्येक विद्यार्थी ने अपना मत रखा। वे कोयला, लोहा, वस्त्र और बिजली में से किसी एक के पुनर्चक्रण की योजना बनाएंगे। आपस में तर्क करके वे इस नतीजे पर पहुँचे कि वे लोहे के पुनर्चक्रण की योजना पर कार्य करेंगे। इस दौरान सभी ने जिस संसाधन का सुझाव दिया था उसके पक्ष में तर्क दिया। इस समूह के साथी उसके विचार से प्रतिवाद करते हुए पाए गए। समूह कार्य के दौरान यह भी देखा गया कि विद्यार्थियों ने दायित्व के पारस्परिक वितरण किया। इन कार्यों का एक पक्ष यह भी रहा किविद्यार्थियों ने अपने साथी के अनुभवों के प्रति तद्नुभूति का भाव दिखाया। उदाहरण के लिए प्रवसन की अवधारणा पर चर्चा के दौरान पाकिस्तान से भारत प्रवसन के मौखिक इतिहास को साझा करने के दौरान हुए विद्यार्थियों ने प्रस्तोता के परिवार के प्रति तद्नुभूति का भाव दिखाया। इस प्रकार के शिक्षणशास्त्रीय परिवेश में अर्थ निर्माण की प्रक्रिया का भागीदार कोई एक विद्यार्थी, एक शिक्षक या एक विचार नहीं रह गया बल्कि कक्षा ने 'सीखने वालों के समुदाय' के रूप में विचारों की साझेदारी और उस पर विचार-विमर्श के उपरांत एक साझे अर्थ का निर्माण किया।

सूचना संग्रह से आलोचनात्मक समझ की ओर

यद्यपि किसी भी अवधारणा को जानने के लिए सूचना आधारभूत निवेश है लेकिन वह अंतिम लक्ष्य नहीं हो सकती है। कक्षा में सूचना की प्रधानता और सूचना का मूल्यांकन

करने की प्रवृत्ति कक्षा में बोलने का अधिकार उन्हें देती है जिसके पास प्रमाणिक और वैध सूचना हो। इस प्रकार से कक्षा संवाद में शिक्षक सूचना का प्रस्तोता और निर्वचनकर्ता बन जाता है और विद्यार्थी उसका अनुपालन करते हैं। इस कार्य में कक्षा में सूचना के बदले आलोचनात्मक चिंतन को पोषित किया गया। इसके लिए पहला कदम कक्षा की चुप्पी को तोड़ना होता था। तदनुरूप सर्वप्रथम कक्षा में बात करने को कक्षा के मानक के रूप में स्थापित किया गया। बात करने की सामग्री के लिए विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञान और अनुभवों को कक्षा में आमंत्रित किया गया। विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञान द्वारा कक्षा विमर्श में सामाजिक परिघटनाओं और प्रक्रियाओं का यथार्थ रूप आया जो उनके जीवन्त अनुभव का हिस्सा था। चूँकि अधिकांश विद्यार्थी समाज के हाशिए के वर्ग से आते थे अत: इसके द्वारा कक्षा में 'उपेक्षितों की आवाज' को स्थान मिला। उदाहरण के लिए इकाई-1 में जल की समस्या पर चर्चा के दौरान विद्यार्थियों ने किराएदारों के लिए जल की समस्या को अलग वर्ग में रखा। इकाई-2 में चलवासी पशुचारण के संदर्भ गड़ेरिया समुदाय का उल्लेख किया गया जो भेड़ बकरियों को लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। इकाई-3 में जनसंख्या विकास की चर्चा के दौरान बच्चों, वृद्धों और महिलाओं के विकास पर बल दिया गया। कक्षा में संवाद के माध्यम से विद्यार्थियों को उन कारणों को खोजने और व्याख्या करने के लिए प्रेरित किया गया जो समाज में असमानता, शोषण और वर्चस्व के लिए उत्तरदायी हैं। जैसे- इकाई-2 में किसान को कृषि कार्य में संलग्न उद्यमी के रूप में न प्रस्तुत करके विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञान के माध्यम से उसके जीवन के यथार्थ-जमीन को बेच देना, दिनरात परिश्रत करना, प्राकृतिक आपदा के कारण फसल का खराब होना और कृषि कार्य में पूरे परिवार की संलग्नता को सम्मिलित किया गया। कक्षा संवाद में विद्यार्थियों को जब इनके कारण खोजने के लिए उत्प्रेरित किया गया तो विद्यार्थियों ने छोटे किसान, बड़े किसान और मजदूरों के वर्ग का उल्लेख किया। जमीन के छोटे आकार और सिंचाई जैसे संसाधन के लिए भारी निवेश का उदाहरण दिया। विद्यार्थियों ने गाँव के ऐसे समुदाय का उल्लेख किया जो कृषि कार्य नहीं करते लेकिन वे लघु उद्योग जैसे-बर्तन बनाने और अचार आदि बेचने में संलग्न हैं। इसी प्रकार इकाई तीन में एक विद्यार्थी ने उसके समुदाय में बाल विवाह के होने का दावा प्रस्तुत किया। उसके विचार को आधार बनाकर बाल विवाह के कारणों पर चर्चा की गयी।

विद्यार्थियों के आलोचनात्मक चिंतक की भूमिका इस पक्ष में भी प्रकट हुई कि उन्होंने समसामयिक समस्याओं जैसे-कृषि प्रदूषण, महिला सुरक्षा और विद्यार्थियों के

विद्यालय में प्रवेश का संदर्भ लिया। यह प्रमाण है कि विद्यार्थी उन सामाजिक-आर्थिक राजनैतिक प्रवृत्तियों को पहचान रहे हैं जो उनके दैनिक जीवन की रचना कर रहे हैं। इन पक्षों को पहचानने के साथ वे इससे बनने वाले सामाजिक यथार्थ की प्रवृत्ति और परिणाम को भी संज्ञान में ले रहे हैं। इस प्रक्रिया में विद्यालयी ज्ञान, उनके दैनंदिन ज्ञान को सवंर्धित कर रहा है। जैसे एक विद्यार्थी ने कक्षा चर्चा में आर्थिक विषमता को संज्ञान में लिया और अपने पिता के नियोक्ता के यहाँ चार गाड़ी होने का संदर्भ लिया। इसके परिणाम की चर्चा करते हुए उसने जल संसाधन के अपव्यय और प्रदूषण के बढ़ने का उदाहरण दिया। इस प्रक्रिया में वे दूसरे के परिप्रेक्ष्य और हितों को भी ध्यान रखते हैं। इसलिए तो जल समस्या पर समुदाय के सदस्यों के लिए साक्षात्कार के प्रश्न को निर्मित करते हुए वे प्रश्न रखते हैं कि 'जब आप पानी का ज्यादा इस्तेमाल करते हैं तो क्या आपके दिमाग में यह बात आती है कि कुछ लोगों को पीने तक का पानी का नहीं मिल पाता? विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञान के माध्यम से उनके पूर्वग्रह और सामाजिक रूढ़ियों को भी पहचाना गया और कक्षा में उन्हें संबोधित किया गया। जैसे-जनसंख्या की विशेषता पर चर्चा के दौरान जब विद्यार्थियों ने जाति को जनसंख्या की एक प्रमुख विशेषता बतायी और जोड़ा कि जनगणना में जाति का उल्लेख होना चाहिए तो कक्षा में जाति के आधार पर भेदभाव को बहस का मुद्दा बनाया गया। इसी तरह विद्यार्थियों ने शाकाहार और माँसाहार के विषय को उठाया और माँसाहार के साथ जाति और धर्म विशेष को संबंधित किया तो उनके इस रुढ़िबद्ध धारणा को संबोधित किया गया। इस प्रकार से प्रस्तुत कार्य ने विद्यार्थियों को ऐसे ज्ञान निर्माता के रूप परिकल्पित किया जो सामाजिक रूपान्तरण का माध्यम बन रहा है। वे जिन विचारों और दृष्टियों को लेकर विद्यालय आते हैं और समाज में जिन भूमिकाओं में सक्रिय रहते हैं उन्हें उन विचारों और भूमिकाओं को देखने की आलोचना दृष्टि प्रदान की गयी। वे खुद को मानव संसाधन मान रहे हैं और अपनी वर्तमान तथा भावी भूमिका को लेकर सचेत हैं। वे न केवल अपने समाज के यथार्थ को पहचान रहे हैं बल्कि इसके प्रति अपने परिप्रेक्ष्य का विकास भी कर रहे हैं।

एक से अधिक पहचान के साथ कक्षा में प्रतिभागिता

प्राय: कक्षा में व्यक्ति को केवल विद्यार्थी की पहचान में देखा जाता है और इस पहचान को उसकी शैक्षिक उपलब्धि व प्रदर्शन के सापेक्ष पुनर्बलित किया जाता है (मैटईसोव और स्मिथ, 2012)। विद्यालय और विद्यालयेतर परिवेश के बीच अंतराल का एक मुख्य कारण विद्यालय में वैध मानी जाने वाली भूमिकाएं हैं जो एक शिक्षित 'व्हाइट कॉलर जॉब' वाली मध्यमवर्गीय पहचान को स्वीकार करती है (ल्यूक, 2010)। यह स्थिति उन

विद्यार्थियों को कक्षा में पहल करने से रोकती है जो इस तरह की पृष्ठभूमि से नहीं आते हैं। इस अध्ययन में विद्यार्थियों की सामाजिक भूमिकाओं को वैध रूप में प्रस्तुत किया गया। इन भूमिकाओं के समावेशन ने विद्यार्थियों की अनेक पहचान को कक्षा में स्थान दिया। विद्यार्थी की भूमिका में बच्चों को ज्ञान धारक, ज्ञान निर्माता और खोज करने वाले की पहचान दी गयी। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को उनके परिवार, समुदाय, क्षेत्र और सांस्कृतिक समूहों के प्रतिनिधि के रूप में भी स्वीकार किया गया। इन भूमिकाओं में विद्यार्थियों ने अपने संदर्भों की पड़ताल की। उदाहरण के लिए प्रथम इकाई के क्रियाकलापों में विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए एक आख्यान दिया गया था। इस आख्यान में दो बच्चे अपनी माँ के साथ घर के काम में मदद कर रहे थे। विद्यार्थियों ने खुद को इस घटनाक्रम से संबंधित किया और परिवार विशेष के सदस्य के रूप अपने निजी जीवन के आख्यानों को प्रस्तुत किया। उनकी परिवार विशेष के सदस्य के रूप में पहचान को कक्षा द्वारा स्वीकार किये जाने के परिणाम स्वरूप ही संसाधन के पुनर्चक्रण के क्रियाकलाप में उनके परिवार द्वारा वास्तविक जीवन में अपनाए जाने वाले तरीके प्रकट हुए। इसी तरह से 'कृषि' से जुड़ी गतिविधियों को इन्होंने कृषक समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने अपने आर्थिक-सामाजिक और सांस्कृतिक अनुभवों को साझा किया। एक जेण्डर विशेष की पहचान के कारण छात्राओं ने इस बात का विरोध किया कि बाल विवाह नहीं होना चाहिए। एक प्रवासी परिवार का होने के कारण विद्यार्थी मूल स्थान और नए स्थान की संस्कृतियों के बीच के अंतर पर विचार प्रस्तुत करते हैं।

इस अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि सीखना अभ्यास या कौशल की यांत्रिक पुनरावृत्ति, सूचनाओं का संग्रहण और पुनरुत्पादन नहीं है बल्कि यह सीखने वालों के विचार, व्यवहार और पहचान को गढ़ता है और उनके जीवन के वृहद्तर अनुभवों को प्रभावित करता है। हमें सीखने वाले को सशक्त अभिकर्ता मानना चाहिए जो विद्यालय और विद्यालय के बाहर की परिस्थितियों और समस्याओं से निपटने में समर्थ हैं। यह अध्ययन प्रमाण प्रस्तुत करता है कि सीखने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञानराशि सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधन है जो कक्षा में 'अधिगमकर्ता के समुदाय' को विकसित करने का माध्यम बनती है। कक्षा में विद्यार्थियों के दैनंदिन ज्ञान के समावेश द्वारा दो कार्य किये जा सकते हैं। प्रथम, विद्यार्थियों में यह संदेश संप्रेषित किया जाए कि वे जो जानते हैं और विद्यालयेतर परिवेश में जो करते हैं वह भी महत्वपूर्ण है। द्वितीय, उनमें यह दृष्टि विकसित की जाए कि वे विद्यालय और विद्यालयेतर परिवेश में जो जानते और करते हैं उन्हें उसे ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करना चाहिए बल्कि उसके प्रति विवेचनात्मक दृष्टि रखनी चाहिए।

विद्यार्थियों के विचारों को महत्ता प्रदान करके और उन्हें कक्षा में शामिल करके उन्हें अपने लक्ष्यों को पहचानने, दायित्व स्वीकार करने और तद्नुसार विद्यालय और विद्यालयेतर परिवेश में अपने कर्तृत्व के अभ्यास के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

यह शोध प्रमाण प्रस्तुत करता है कि सशक्तिकरण यद्यपि व्यक्ति में फलित होती है लेकिन यह समूह में विकसित होता है। इस कार्य में देखा गया कि समूह कार्य के दौरान विद्यार्थी एक दूसरे का सम्मान, विचारों का स्वागत, सहमति और असहमति व्यक्त करते हैं। ऐसे अभ्यास सभी सदस्यों में विश्वास पैदा करता है कि वे महत्वपूर्ण हैं और कक्षा विमर्श में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। अत: कक्षा में विषय की कुशलताओं के विकास के साथ सामाजिक अंत:क्रियाओं को भी उत्प्रेरित करना चाहिए। विद्यार्थी कक्षा में किसी भी समस्या का समाधान स्वतंत्र रूप से करना सीखे लेकिन उन्हें यह सचेत किया जाए कि जैसे उनके अनुभव, सूचनाएं और समस्याएं महत्वूपर्ण हैं वैसे ही कक्षा के अन्य सहभागियों के अनुभव, सूचनाएं और समस्याएं महत्वपूर्ण हैं। उनकी और उनके साथियों की समस्याएं भी महत्वपूर्ण हैं जिन्हें दूर किया जाना आवश्यक है। इसके लिए वे स्वयं को कर्ता मानते हुए पहल करें। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थी की अधिगम आवश्यकताओं के साथ उनके सामाजिक आवश्यकता को संबोधित किया जाए।

यह शोध सामाजिक विज्ञान के कक्षा विमर्श का गुणात्मक विधियों द्वारा व्याख्यात्मक अध्ययन है जो देशकाल विशेष में शोधकर्ता की दृष्टि और सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य विशेष के अनुरूप भारतीय संदर्भ विशेष में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की समस्याओं, सीमाओं और संभावनाओं को प्रस्तुत करता है। इसे सामाजिक विज्ञान की कक्षा के प्रक्रियागत पहलुओं के विवेचन और विश्लेषण के एक दस्तावेज के रूप में भी देखा जा सकता है।

संदर्भ

ब्राउन, जे.एस., कोलिन्स, ए. एंड डुगिड, पी. (1989) सिचुएटेड कागनिशन एंड कल्चर आफ लर्गिंग *एजुकेशनल रिसर्चर, 18*(1), 32–42

डेजिंन, एन.के. (1989) *इंटरप्रेटिव इंटरएक्शनिज्म* न्यूबरी पार्क, कालिफ: सेज पब्लिकेशन

डेजिंन, एन.के. एंड लिंकन, वाई. (1984) *हैंडबुक आफ क्वालिटेटिव रिसर्च,* थाउजंड ओक्स, सीए: सेज

एंयेदी, एन. एंड गोल्डबर्ग, जे. (2004) इंक्वायरी इन इंटरएक्शन: हाउ लोकल अडप्टेशंस आफ करीकुला सेप क्लासरूम कम्युनिटीज, *जर्नल ऑफ रिसर्च इन साइंस टीचिंग,* 41(9), 905–935

गी, जे. (2001) आइडेंटिटि एज एन अनालिटिकल लैंस फार रिसर्च इन एजुकेशन, इन डब्ल्यू. सेकडा (एड.), *रिव्यू आफ रिसर्च इन एजुकेशन,* (वाल्यूम 25, पीपी. 99–125), वाशिंगटन डीसी: अमेरिकन एजुकेशनल रिसर्च एसोसिएशन

गॉनलेज, एन. (2005) बीयोंड कल्चर: द हाइब्रिडिटी आफ फण्ड्स ऑफ नॉलेज, इन एन. गॉनलेज, एल.सी. मोल – सी. अमन्ती (एड्स.) *फण्ड्स आफ नॉलेज: थियोरिंग प्रैक्टिसेज इन हाउसहोल्ड्स, कम्युनिटीज, एंड क्लासरूम* (पीपी. 29–46). महवाह, एन.जे. लॉरेन्स अर्लबॉम एसोसिएट्स, पब्लिसर्ज

हिक्स, डी. (1996), *डिसकोर्स, लर्निंग, एंड स्कूलिंग,* कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस

लडसन-बिलिंग, जी. (1995), टूवार्ड्स ए थ्योरी आफ कल्चरली रिलेवन्ट पेडागॉगी, *अमेरिकन एजुकेशनल रिसर्च जर्नल,* 32, 465–492

लेव, जे., एंड वेंगर, ई. (1991), *सिचुएटेड लर्निंग: लेजिटिमेट पेरीफेरल पार्टीसिपेशन,* कैम्ब्रिज, एमए: कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस

लेमके, जे.एल. (2000), एक्रॉस स्केल्स आफ टाइम: अर्टीफैक्ट्स, एक्टिवीटीज एंड मीनिंग इन इकोसोसियल सिस्टम, *माइंड, कल्चर, एक्टिविटी* 7(4), 273–290

माईल्स, एम. एंड हुबरमन, एम. (1994) *क्वालिटेटिव डाटा अनालिसिस: एन एक्सपैंडेड सोर्सबुक, न्यूयार्क: सेज*

मोजे, ई.बी., कैचनोवसकी, के. एम., क्रमेर, के. एलिस, एल., कैरीलो, आर., एंड कूलो टी. (2004). वर्किंग टूवर्ड् थर्ड स्पेस इन कंटेंट एरिया लिट्रेसी: एन एक्जामिनेशन ऑफ एवरीडे फण्ड्स ऑफ नॉलेज एंड डिस्कोर्स. *रीडिंग रिसर्च क्वार्टरली,* 39(1), 38–70

मॉल, एल.सी. (2002). थ्रू द मेडीएशन आफ अदर्स: व्योग्तस्कैन रिसर्च आन टीचिंग इन वी. रिर्चड्सन (एड.) *हैण्डबुक आफ रिसर्च आन टीचिंग* (फोर्थ एड.) वाशिंगटन, डीसी: अमेरीकन एजुकेशन रिसर्च एसोसिएशन

रॉगोफ, बी. (1994). डवलपिंग अन्डरस्टैंडिंग आफ द आइडिया आफ कम्यूनिटीज आफ लनर्स, *माइंड, कल्चर एंड एक्टिविटी,* 1(4), 209–226

स्फर्ड, ए. एंड प्रूस्क, ए. (2005), टैलिंग आइडेंटिटीज: इन सर्च आफ एन अनालिटिक टूल फार इन्वैस्टीगेटिंग लर्निंग एज ए कल्चरली शेयर्ड एक्टिविटी. *एजुकेशनल रिसर्चर,* 34(4), 14–22

शोर, आई. एंड फ्रेरे, पी. (1987), *ए पेडागॉगी फार लिब्रेशन,* न्यूयार्क: बर्गिन एंड ग्रेवी.

टान, ई. एंड बर्टन, ए.सी. (2010), इम्पावरिंग साइंस एंड मैथेमैटिक्स एजुकेशन इन अर्बन कम्यूनिटीज, शिकॉगो: युनिर्वसिटी आफ शिकागो प्रैस

थ्राप, आर., एंड गलीमोर, आर. (1998), *रॉसिंग माइंड टू लाइफ: टीचिंग, लर्निंग एंड स्कूलिंग इन सोशियल कॉटेंक्स्ट,* कैम्ब्रिज, एमए: कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस

व्योग्त्सकी, एल.एस. (1987). *थॉट एंड लैग्वेज़* कैम्ब्रिज, एमए: द एमआईटी प्रैस

वेंगर, ई. (1998). कम्युनिटीज आफ प्रैक्टिस: लर्निंग, मीनिंग एंड आइडेंटिटी. कैम्ब्रिज, इंग्लैंड: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त, 2017

अध्यापक-शिक्षकों की सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता का अध्ययन

बृजेश कुमार* एवं **पी.के. साहू****

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य–अध्यापक शिक्षकों हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता का अध्ययन करना। उत्तर भारत के हिन्दी भाषा भाषीय क्षेत्रों में से विश्वविद्यालय के अध्यापक शिक्षा विभाग एवं महाविद्यालय के अध्यापक शिक्षा विभाग के कार्यरत अध्यापक शिक्षकों में से 900 अध्यापक शिक्षकों को न्यादर्श के रूप में चुनाव किया गया। अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष में स्वयं के व्यक्तित्व का विकास, छात्राध्यापकों को समझना, सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र, पाठ्यक्रम, शिक्षा के क्षेत्र में दक्षता, प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता, कार्यक्रम कार्यान्वियन हेतु दक्षता, नवाचारी शिक्षणशास्त्र में प्रशिक्षण, इन्टर्नशिप शिक्षण कार्य के विकास में दक्षता, आंकलन एवं मूल्यांकन, क्रियात्मक अनुसंधान के ज्ञान का विकास, संस्थान की गुणवत्ता हेतु, भविष्यपरक नियोजन करने हेतु के सम्बन्ध में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के अध्यापक शिक्षा विभाग में कार्यरत अध्यापक शिक्षकों की सेवाकालीन प्रशिक्षण आवश्यकता को चिन्हित करना। x^2 *परीक्षण के आधार पर महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के अध्यापक शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण आवश्यकता समान स्तर पर पाया गया।*

भूमिका

अध्यापक शिक्षक एक सक्षम, आत्मनिर्भर अनुशासित चरित्रवान आदि गुणों से युक्त शिक्षकों के लिए आवश्यक है। इसी कड़ी में अध्यापक शिक्षकों को विशेष सेवाकालीन

* शोधछात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
** शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रशिक्षण दिया जाना उचित होगा। जिससे अध्यापक शिक्षकों का सर्वांगीण विकास किया जा सके एवं समाज में अध्यापक की निर्णायक भूमिका हो, व शिक्षा की गुणवत्ता और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के योगदान के लिए उत्तरदायी कारकों में से सेवाकालीन प्रशिक्षण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए एम.बी. बुच (1968) ने स्वीकार किया कि ''सेवाकालीन कार्यक्रम के अन्तर्गत वे समस्त क्रियाकलाप समाहित किये जा सकते है, जिनकी सहायता से अध्यापक/अध्यापिकाएं अपनी उद्यमगत योग्यता में वृद्धि सेवारत अवस्था में कर सकते हैं।'' अतः अध्यापक शिक्षकों के शिक्षण कौशल एवं विषय दक्षता हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता से सम्बन्धित विभिन्न कौशलों में दक्ष बनाया जाय, जिससे अध्यापक शिक्षक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में योगदान दे सकें।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की स्थाई समिति (1975-76) ने सेवारत शिक्षा पर कम से कम प्रत्येक पाँच वर्ष से एक महीने के लिए विद्यालयीय शिक्षक व शिक्षक प्रशिक्षकों को सेवारत प्रशिक्षण प्राप्त करना जरुरी होना चाहिए। सेवारत शिक्षा मुख्य रुप से पत्राचार पाठ्यक्रमों के द्वारा संचालित की जानी चाहिए।

बेनेकेनाल व साहू (1996) ने कर्नाटक के महाविद्यालयी अध्यापकों के सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता पर शोध कार्य किया जिसका उद्देश्य वर्तमान के साथ-साथ भविष्य में अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण आवश्यकता क्षेत्र को ज्ञात करना था अध्यापन के परिणामस्वरूप निष्कर्ष में पाया गया कि-

- व्यवसाय की उन्नति
- मूल्यांकन प्रविधियों में प्रवीणता
- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की समस्याओं के समाधान,
- भविष्य के महाविद्यालयी अधिगमकर्ताओं के ज्ञान,
- आधुनिक शैक्षिक तकनीक का ज्ञान,
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में रुचि उत्पन्न करना,
- राष्ट्रीय एकता के पोषक वातावरण के निर्माण,

- शिक्षक शिक्षार्थी सम्बन्धों में खुलापन लाने के कौशल में प्रवीणता,
- विद्यार्थियों में सृजनात्मकता का विकास करने वाले अधिगम अनुभव का विकास।

सिंह व साहू (2010) ने अपने शोध ग्रन्थ में पाया कि जो शिक्षक सेवारत है, उन्हें विभिन्न कौशलों में सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता है। उन्होंने अपने सर्वेक्षण माध्यम से पाया कि विश्वविद्यालय और उसके संघटक महाविद्यालय के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं को उनके व्यक्तित्व, शिक्षण, शोध एवं अन्य बिन्दुओं में प्रशिक्षण की आवश्यकता समय-समय पर दिये जाने की आवश्यकता महसूस की गयी है।

अध्यापक शिक्षा पर न्यायमूर्ति वर्मा (2012) आयोग ने निम्न बिन्दुओं पर जोर दिया-

(1) अध्यापकों को तत्कालीन परिप्रेक्ष्यों का ज्ञान होना चाहिए।

(2) सेवारत प्रशिक्षण द्वारा शिक्षण कौशल का गुण होना चाहिए।

(3) प्रत्येक समय नवीन शिक्षण कौशलों का विकास।

(4) छात्रों को समझना व उनका विश्लेषण करने की क्षमता।

(5) अध्यापकों को अपने क्षेत्र में नूतन कार्यक्रमों का ज्ञान होना।

(6) तत्कालीन नवीन ज्ञान होना।

(7) तार्किक ज्ञान होना।

(8) वृत्तिगत विकास हेतु संगोष्ठियों, सम्मेलनों तथा कार्यशालाओं में भाग लेना।

(9) तत्कालीन गुणवत्तापूर्ण अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का नियोजन व सामग्री इत्यादि का ज्ञान होना।

(10) 'गुणवत्तापूर्ण अध्यापक' बनने की दक्षता रखना।

(11) समय-समय पर प्रशिक्षण का आंकलन करना।

(12) डाइट तथा बी.आर.सी., जैसे संस्थानों को अच्छे बनाये जाने व उचित संसाधनों का विकास करना।

(13) सेवाकालीन शिक्षण में नीतिगत शिक्षा का ज्ञान होना जैसे-
    - कार्यान्वयन होना।
    - आंकड़ा अद्यतन करते रहना।

- समय-समय एन.सी.टी.ई. एवं एन.सी.ई.आर.टी. के नियम निर्देशों को समझते रहना।
- आई.सी.टी. का ज्ञान होना।
- समय-समय पर प्रशिक्षण करते रहना।

(14) प्रशिक्षण दो तरह की होनी चाहिए :

- कोर फैकल्टी प्रशिक्षण-पूर्णकालिक प्रशिक्षण देना।
- अतिथि संकाय प्रशिक्षण समय-समय पर कुछ दिनों के लिए प्रशिक्षण दिया जाना।

(15) सेवाकालीन प्रशिक्षण में विभिन्न प्रकार के शैक्षिक सत्रों का आयोजन।

नई शिक्षा नीति समिति (2017)-ने अध्यायक शिक्षा पर निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :

- शिक्षण कौशल का ज्ञान होना
- वृत्तिक विकास हेतु समझ का ज्ञान होना
- अध्यापक शिक्षा में शैक्षिक तकनीक के महत्व का ज्ञान होना
- अध्यापक शिक्षा में गुणात्मक विकास हेतु राज्य, जिला व ब्लाक स्तर की समझ
- अध्यापकों को समय-समय पर मूल्यांकन परीक्षण हेतु समझ रखना
- संस्थाओं में गुणात्मक अध्यापकों को प्राथमिकता या महत्व देने का ज्ञान
- शिक्षण कार्यों में आई.सी.टी. मॉडल का अत्यधिक प्रयोग करने पर जोर देना
- अध्यापकों को प्रशिक्षण तकनीकी उपकरणों के माध्यम से देने की समझ होना
- सभी को एक समान दृष्टि से देखने की समझ का ज्ञान होना
- अध्यापकों में अपनी भूमिका को समझने का ज्ञान होना
- अध्यापक एक गाइड की तरह सभी को बेहतर ढंग से जानकारी देने की समझ होना

- अध्यापकों को नई शिक्षा नीति की जानकारी रखना
- कौशल का कुशलता पूर्वक विकास की जानकारी देना
- ग्रामीण क्षेत्रों के शिक्षण संस्थानों को आई.सी.टी. के उपयोग की जानकारी की समझ होना
- अध्यापक को ऐसा बनाया जाए जो सभी समुदायों को समान लाभ पहुंचाए
- अध्यापकों को नियमित होने की समझ होना
- प्रशिक्षण कालेजों में आई.सी.टी. के उपयोग का ज्ञान होना
- सृजनात्मकता लाने की समझ होना
- शैक्षिक प्रबन्धन की समझ होना
- भ्रष्टाचार को हटाने की समझ होना
- राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर मानदंड बनाये, जिससे योग्यता की पहचान की समझ होना
- मेरिट के आधार पर अध्यापक आवश्यकता की समझ रखना
- अभिप्रेरित करने का ज्ञान होना
- अध्यापकों को प्रशिक्षण की व्यवस्था करने की समझ होना
- एन.सी.टी.ई. के मानदंड के अनुसार दो वर्षीय बी.एड. एवं एम.एड. कार्यक्रमों से छात्राध्यापकों के भविष्य को गुणक्तायुक्त बनाये जाने की समझ होना
- डाइट प्रोग्राम में अध्यापक प्रशिक्षण को अपने विषय की पूर्ण जानकारी।

कुमार बी. एवं साहू पी.के. (1 सितम्बर, 2017) ने अपने अध्ययन में उत्तर भारत के हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रों में से 50 वित्तपोषित व 50 स्ववित्तपोषित सेवाकालीन अध्यापक शिक्षकों को न्यादर्श हेतु चुनाव किया। आंकड़ों से स्पष्ट हुआ कि वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित सेवाकालीन अध्यापक शिक्षकों को उक्त दिये गये बिन्दुवार प्रश्नों पर समान रुप से प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस हुई।

सेवाकालीन प्रशिक्षण की वर्तमान में आवश्यकता : अध्यापक शिक्षकों के शिक्षण कार्यों प्रबन्धनों संस्थानों एवं वृत्तिक उन्नयन हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण विभिन्न स्तरों पर

कार्यरत अध्यापकों हेतु व्यावसायिक उन्नति में सहायता देने हेतु व उनमें शिक्षण कौशल को रोचक बनाने हेतु उचित होगा।

सेवाकालीन प्रशिक्षण से अध्यापक शिक्षकों की अपने स्वयं के विकास, छात्राध यापकों को समझना, सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र, पाठ्यक्रम, छात्राध्यापकों के विकास में दक्षता, सैद्धान्तिक पाठ्यक्रमों का ज्ञान, विद्यालयी पाठ्यचर्या विषय में दक्षता, क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता, कार्यक्रम कार्यान्वयन हेतु दक्षता, नवाचारी शिक्षणशास्त्र में प्रशिक्षण की आवश्यकता, इन्टर्नशिप शिक्षण कार्य का ज्ञान, शैक्षिक तकनीक का ज्ञान, आकलन एवं मूल्यांकन का ज्ञान, अनुसंधान का ज्ञान, क्रियात्मक अनुसंधान का ज्ञान, संस्थान की गुणवत्ता का ज्ञान, भविष्यपरक नियोजन करने का कौशल इत्यादि बिन्दुवार तथ्यों में दक्ष बनाया जाना प्रासांगिक होगा।

अध्ययन के उद्देश्य

1. अध्यापक शिक्षकों हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता का अध्ययन करना।
2. अध्यापक शिक्षकों के सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता एवं संस्थागत पृष्ठभूमि के साहचर्य का अध्ययन करना।

परिकल्पना : इस अध्ययन के लिए निम्न परिकल्पना का निर्माण किया गया है :

1. अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि तथा सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य है।

अध्ययन विधि : प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया है।

जनसंख्या : प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर भारत के हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के सेवाकालीन बी.एड. एव बी.टी.सी. अध्यापक शिक्षकों को जनसंख्या के रूप में चुनाव किया गया।

न्यादर्श : सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु 15 विश्वविद्यालयो एवं उससे सम्बद्ध शिक्षण संस्थानों के शिक्षाशास्त्र विभागों में से 300 बी.एड. एवं 100 बी.टी.सी. अध्यापक शिक्षकों एवं 20 डाइट प्रशिक्षण संस्थान, 10 वित्तपोषित महाविद्यालय एवं 20 स्ववित्तपोषित शिक्षण संस्थान महाविद्यालयों में से 200 बी.एड. एवं 300 बी.टी.सी. अध्यापक शिक्षकों का चयन उत्तर भारत के हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में से कुल (900) का चयन किया गया।

उपकरण : अध्ययन के उद्देश्यों की अभिपूर्ति के लिए शोधार्थियों द्वारा स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया जिसमें ''सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु आवश्यकता प्रश्नावली'' का निर्माण किया गया, जो विभिन्न विषय विशेषज्ञों तथा शिक्षकों से प्राप्त सुझावानुसार एवं शोधार्थियों द्वारा इस प्रश्नावली में कुल 18 घटकों पर अध्ययन किये गये। जो निम्नवत है :

- स्वयं का व्यक्तित्व,
- छात्राध्यापकों को समझना,
- सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र,
- पाठ्यक्रम,
- छात्राध्यापकों के विकास में दक्षता की आवश्यकता,
- सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम का ज्ञान (शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में),
- विद्यालयी पाठ्यचर्या संबंधित विषय में दक्षता,
- क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता,
- कार्यक्रम कार्यान्वयन हेतु दक्षता,
- नवाचारी शिक्षणशास्त्र में प्रशिक्षण की आवश्यकता,
- प्रशिक्षण तकनीक कौशल का ज्ञान,
- इन्टर्नशिप शिक्षण कार्य का ज्ञान,
- शैक्षिक तकनीक का ज्ञान,
- आकलन एवं मूल्यांकन का ज्ञान,
- अनुसंधान का ज्ञान,
- क्रियात्मक अनुसंधान का ज्ञान,
- संस्थान की गुणवत्ता का ज्ञान,
- भविष्यपरक नियोजन।

प्रश्नावली में कुल 90 कथन दिये गये थे। प्रत्येक कथन के सामने तीन विकल्प वाले उत्तर दिये गये। जिसमें अत्यन्त आवश्यक, सामान्य आवश्यक, अनावश्यक के रूप में सम्मिलित किय गये।

आंकड़ों का विश्लेषण तथा विवेचन : प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के विश्लेषण के लिए काई वर्ग परीक्षण (x^2) का प्रयोग सार्थकता स्तर को ज्ञात करने के लिए किया गया। इसके अतिरिक्त प्रतिशत विश्लेषण (%) का प्रयोग भी किया गया।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा स्वयं के व्यक्तित्व विकास के लिये सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-1

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं स्वयं के व्यक्तित्व के विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	215 (53.75%)	177 (44.25%)	8 (2%)	400 (100%)	2.02 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	260 (52%)	325 (47%)	5 (1%)	500 (100%)	
योग	**475 (52.78%)**	**412 (45.77%)**	**13 (1.45%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 2.02 है, जो कि (मुक्तांश df-2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस मान क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की स्वयं के व्यक्तित्व के विकास हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं उनके सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों की स्वयं के व्यक्तित्व विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान है।

तालिका-1 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि स्वयं के विकास हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (52.78%) सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा छात्राध्यापकों को समझने के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-2

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं छात्राध्यापकों को समझने हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	218 (54.50%)	173 (43.25%)	9 (2.25%)	400 (100%)	2.67 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	265 (53%)	230 (46%)	5 (1%)	500 (100%)	
योग	**483 (53.67%)**	**403 (44.78%)**	**14 (1.55%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 2.67 है, जो कि (मुक्तांश df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अत: इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना छात्राध्यापकों को समझने हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता संबंधित नहीं है, को स्वीकार किया जाता है। अत: हम कह सकते हैं कि अध्यापक शिक्षकों द्वारा छात्राध्यापकों को समझने हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान है।

तालिका-2 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि छात्राध्यापक को समझने हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षकों (53.67%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-3

सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	**अत्यन्त आवश्यक**	**सामान्य आवश्यक**	**अनावश्यक**	**योग**	**अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर**
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	210 (52.50%)	180 (45%)	10 (2.50%)	400 (100%)	3.51 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	255 (51%)	240 (48%)	5 (1%)	500 (100%)	
योग	**465 (51.67%)**	**420 (46.67%)**	**15 (1.66%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 3.51 है, जो कि (मुक्तांश df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की सामान्य शिक्षण एवं शिक्षण शास्त्र में दक्षता हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों द्वारा सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता समान है।

तालिका-3 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि सामान्य शिक्षण एवं शिक्षण शास्त्र हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (51.67%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा पाठ्यक्रम में दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-4

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं पाठ्यक्रम में दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	**अत्यन्त आवश्यक**	**सामान्य आवश्यक**	**अनावश्यक**	**योग**	**अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर**
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	216 (54%)	180 (45%)	04 (1%)	400 (100%)	4.48 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	245 (49%)	242 (48.4%)	13 (2.60%)	500 (100%)	
योग	**461 (51.23%)**	**422 (46.89%)**	**17 (1.88%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 4.48 है, जो कि (मुक्तांश df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अत: इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की पाठ्यक्रम हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, यह स्वीकार किया जाता है। अत: हम कह सकते हैं कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को पाठ्यक्रम दक्षता के सम्बन्ध में सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर पर पाये गये।

तालिका-4 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि पाठ्यक्रम में दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (51.23%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा छात्राध्यापकों के विकास में दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-5

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमों एवं छात्राध्यापकों के विकास में दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	**अत्यन्त आवश्यक**	**सामान्य आवश्यक**	**अनावश्यक**	**योग**	**अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर**
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	219 (54.75%)	176 (44%)	05 (1.25%)	400 (100%)	2.97 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	245 (49%)	247 (49.40%)	08 (1.60%)	500 (100%)	
योग	**464 (51.55%)**	**423 (47%)**	**13 (1.45%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-5 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 2.97 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की छात्राध्यापकों के विकास हेतु दक्षता में अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता संबंधित नहीं है, यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों हेतु छात्राध्यापकों के विकास में दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान है।

तालिका-5 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि छात्राध्यापकों के विकास में दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (51.55%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम का ज्ञान (शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में) दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-6

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम का ज्ञान (शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में) दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	224 (56%)	168 (42%)	8 (2%)	400 (100%)	4.5 7N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	248 (49.60%)	245 (49%)	07 (1.40%)	500 (100%)	
योग	**472 (52.45%)**	**413 (45.88%)**	**15 (1.67%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-6 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 4.57 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम का ज्ञान हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता संबंधित नहीं है, यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों हेतु सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम का ज्ञान हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये है।

तालिका-6 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम का ज्ञान हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (52.45%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा विद्यालयी पाठ्यचर्या संबंधित विषय में दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका–7

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं विद्यालयी पाठ्यचर्या संबंधित विषय में दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	225 (56.25%)	170 (42.50%)	5 (1.25%)	400 (100%)	3.47 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	250 (50%)	243 (48.60%)	07 (1.40%)	500 (100%)	
योग	**475 (52.78%)**	**413 (45.88%)**	**12 (1.33%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका–7 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 3.47 है, जो कि (मुक्तांश–df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना विद्यालयी पाठ्यचर्या सम्बन्धित विषय में दक्षता हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है, यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग अध्यापक शिक्षकों को पाठ्यचर्या सम्बन्धित विषय में दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

तालिका–7 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि पाठ्यचर्या संबंधित विषय में दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (52.78%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-8

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	226 (56.5%)	167 (41.75%)	07 (1.75%)	400 (100%)	3.94 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	250 (50%)	242 (48.43%)	08 (1.6%)	500 (100%)	
योग	**476 (52.89%)**	**409 (45.44%)**	**15 (1.67%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-8 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 3.94 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है, यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

तालिका-8 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (52.89%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा हेतु कार्यक्रम कार्यान्वयन हेतु दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-9

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन में दक्षता हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	219 (54.75%)	178 (44.50%)	03 (0.75%)	400 (100%)	4.89 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	240 (48%)	252 (50.4%)	08 (1.6%)	500 (100%)	
योग	**459 (51%)**	**430 (47.77%)**	**11 (1.23%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-9 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 4.89 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की कार्यक्रम कार्यान्वयन हेतु दक्षता के लिये अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को कार्यक्रम कार्यान्वयन में दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

तालिका-9 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि कार्यक्रम कार्यान्वयन के लिए दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (51%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा नवाचारी शिक्षणशास्त्र में प्रशिक्षण के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-10

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं नवाचारी शिक्षण शास्त्र में प्रशिक्षण हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	220 (55%)	175 (43.75%)	05 (1.25%)	400 (100%)	3.34 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	244 (48.80%)	250 (50%)	06 (1.20%)	500 (100%)	
योग	**464 (51.55%)**	**426 (47.34%)**	**11 (1.23%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-10 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 3.34 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की नवाचारी शिक्षणशास्त्र में प्रशिक्षण हेतु दक्षता के लिये अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को नवाचारी शिक्षणशास्त्र में प्रशिक्षण के लिए दक्षता हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

तालिका-10 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि नवाचारी शिक्षणशास्त्र में प्रशिक्षण के लिए दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (51.55%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण तकनीक कौशल के ज्ञान के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-11

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं प्रशिक्षण तकनीक कौशल के ज्ञान हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	230 (57.5%)	165 (41.25%)	05 (1.25%)	400 (100%)	5.00 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	250 (50%)	243 (48.60%)	07 (1.40%)	500 (100%)	
योग	**480 (53.34%)**	**408 (45.33%)**	**12 (1.33%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-11 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 5 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अत: इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना प्रशिक्षण तकनीक कौशल के ज्ञान हेतु दक्षता के लिये अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है। अत: हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को प्रशिक्षण तकनीक कौशल का ज्ञान के लिए दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

तालिका-11 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि प्रशिक्षण तकनीक कौशल का ज्ञान के लिए दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (53.34%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा इन्टर्नशिप (प्रशिक्षुता) शिक्षण कार्य के ज्ञान के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-12

इन्टर्नशिप शिक्षण कार्य के ज्ञान हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	227 (56.75%)	170 (42.50%)	03 (0.75%)	400 (100%)	2.96 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	260 (52%)	232 (46.40%)	08 (1.60%)	500 (100%)	
योग	**487 (54.12%)**	**402 (44.66%)**	**11 (1.22%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-12 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 2.96 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की इन्टर्नशिप शिक्षण कार्य के ज्ञान हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को इन्टर्नशिप शिक्षण कार्य के ज्ञान हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के है।

तालिका-12 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि इन्टर्नशिप शिक्षण कार्य के ज्ञान हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (54.12%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा शैक्षिक तकनीक के ज्ञान की दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका–13

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं शैक्षिक तकनीक के ज्ञान की दक्षता हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	224 (56%)	171 (42.75%)	05 (1.25%)	400 (100%)	1.92 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	257 (51.40%)	237 (47.4%)	06 (1.2%)	500 (100%)	
योग	**481 (53.45%)**	**408 (45.33%)**	**11 (1.22%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका–13 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 1.92 है, जो कि (मुक्तांश–df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना की शैक्षिक तकनीक के ज्ञान की दक्षता हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है, यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को शैक्षिक तकनीक के ज्ञान की दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

तालिका–13 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि शैक्षिक तकनीक के ज्ञान की दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (53.45%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा आकलन एवं मूल्यांकन के ज्ञान में दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-14

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं आकलन एवं मूल्यांकन के ज्ञान में दक्षता हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	228 (57%)	167 (41.75%)	05 (1.25%)	400 (100%)	2.03 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	261 (52.2%)	232 (46.4%)	07 (1.4%)	500 (100%)	
योग	**489 (54.34%)**	**399 (44.33%)**	**12 (1.33%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-14 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 2.03 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना आकलन एवं मूल्यांकन के ज्ञान की दक्षता हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को आकलन एवं मूल्यांकन के ज्ञान की दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

तालिका-14 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि आकलन एवं मूल्यांकन के ज्ञान की दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (54.34%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा अनुसंधान के ज्ञान में दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका–15

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं अनुसंधान के ज्ञान में दक्षता हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	230 (57.5%)	164 (41%)	06 (1.5%)	400 (100%)	4.49 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	252 (50.4%)	240 (48%)	08 (1.6%)	500 (100%)	
योग	**482 (53.56%)**	**404 (44.88%)**	**14 (1.56%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका–15 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 4.49 है, जो कि (मुक्तांश–df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना अनुसंधान के ज्ञान की दक्षता हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को अनुसंधान के ज्ञान की दक्षता हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

तालिका–15 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि अनुसंधान के ज्ञान की दक्षता हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षक (53.96%) सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा क्रियात्मक अनुसंधान के ज्ञान सम्बन्धी दक्षता के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-16

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं क्रियात्मक अनुसंधान के ज्ञान सम्बन्धी दक्षता हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	224 (56%)	171 (44.75%)	05 (1.25%)	400 (100%)	3.69 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	248 (49.6%)	244 (48.8%)	08 (1.6%)	500 (100%)	
योग	**472 (52.44%)**	**414 (46.12%)**	**13 (1.44%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-17 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 5.05 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अत: इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना क्रियात्मक अनुसंधान हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है। अत: हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को क्रियात्मक अनुसंधान हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

तालिका-17 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि क्रियात्मक अनुसंधान हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षकों (52.44%) ने सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा संस्थान की गुणवत्ता का ज्ञान के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-17

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं संस्थान की गुणवत्ता का ज्ञान हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	227 (56.75%)	166 (41.5%)	07 (1.75%)	400 (100%)	5.05 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	252 (50.4%)	243 (48.6%)	05 (1%)	500 (100%)	
योग	**479 (53.33%)**	**409 (45.45%)**	**12 (1.33%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-17 के अवलोकन से स्पष्ट है। कि अवलोकित x^2 का मूल्य 5.05 है। जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है। अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है। इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना संस्थान की गुणवत्ता का ज्ञान हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सम्बन्धित नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को संस्थान की गुणवत्ता का ज्ञान हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

उपरोक्त तालिका-17 से ज्ञात हुआ कि संस्थान की गुणवत्ता का ज्ञान हेतु अधिकांश अध्यापक शिक्षकों (53.22%) ने सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यन्त आवश्यक मानते है।

- **अध्यापक शिक्षकों द्वारा भविष्यपरक नियोजन करने के कौशल के लिए सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता**

तालिका-18

अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं भविष्यपरक नियोजन करने के कौशल ज्ञान हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता में साहचर्य का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	अवलोकित x^2 मूल्य df=2 पर
विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षक	228 (57%)	167 (41.75%)	05 (1.25%)	400 (100%)	4.59 N.S.
महाविद्यालय अध्यापक शिक्षक	249 (49.8%)	244 (48.8%)	07 (1.4%)	500 (100%)	
योग	**477 (53%)**	**411 (45.66%)**	**12 (1.34%)**	**900 (100%)**	

.05 पर असार्थक है।

तालिका-18 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मूल्य 4.59 है, जो कि (मुक्तांश-df=2) पर .05 स्तर के सारणी मान से कम है, अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है, इस क्षेत्र के लिए बनी शून्य परिकल्पना भविष्यपरक नियोजन करने के कौशल ज्ञान हेतु अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पृष्ठभूमि एवं सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता संबंधित नहीं है, यह स्वीकार किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों के लिए भविष्यपरक नियोजन करने के कौशल ज्ञान हेतु सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता समान है।

तालिका-18 के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि भविष्यपरक नियोजन करने के कौशल ज्ञान हेतु ज्ञान अधिकांश अध्यापक शिक्षक (53%) सेवाकालीन शिक्षा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

उपरोक्त परिणामों से ज्ञात हुआ कि अध्यापक शिक्षकों की संस्थागत पुष्ठभूमि एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों की आवश्यकता के साहचर्य में सार्थक अन्तर नहीं है। अत: विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों की आवश्यकता समान स्तर के पाये गये।

अत: उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि अधिकांश संख्या में अध्यापक शिक्षकों ने सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यन्त आवश्यक मानते है जो निम्न घटकों से स्पष्ट हुआ है:

- स्वयं के व्यक्तित्व विकास में (52.78%)
- छात्राध्यापकों को समझने में (53.67%)
- सामान्य शिक्षण एवं शिक्षण शास्त्र के समझ में (51.67%)
- पाठ्यक्रम विकास में (51.23%)
- शिक्षा के परिप्रेक्ष्य के दक्षता विकास में (52.75%)
- विद्यालयी पाठ्यचर्या सम्बन्धित विषय में दक्षता विकास में (52.78%)
- छात्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप के दक्षता में (52.89%)
- कार्यक्रम कार्यान्वयन हेतु दक्षता में (51%)
- नवाचारी शिक्षण शास्त्र प्रशिक्षण विकास में (51.55%)
- प्रशिक्षण तकनीक कौशल विकास में (53.34%)
- इन्टर्नशिप शिक्षण कार्य को ज्ञान के विकास में (54.12%)
- शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान विकास में (53.45%)
- आकलन एवं मूल्यांकन के विकास में (54.45%)
- अनुसंधान के विकास में (53.36%)
- क्रियात्मक अनुसंधान के ज्ञान के विकास में (52.44%)
- संस्थान की गुणवत्ता बढ़ाने के ज्ञान में (53.22%)
- भविष्यपरक नियोजन करने के कौशल विकास में (53%)

अत: उपरोक्त परिणामों को देखते हुए कहा जा सकता है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को उपरोक्त दिये गये बिन्दुओं के

परिप्रेक्ष्य में प्रशिक्षण लेने की आवश्यकता स्तर समान है। अधिकांश संख्या में अध्यापक शिक्षकों ने सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यन्त आवश्यक माना है।

शैक्षिक निहितार्थ

अतः उपरोक्त परिणामों को देखते हुए कहा जा सकता है कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यापक शिक्षकों को उपरोक्त दिये गये बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में प्रशिक्षण लेने की आवश्यकता स्तर समान है। अधिकांश संख्या में अध्यापक शिक्षकों ने सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यन्त आवश्यक माना है।

संदर्भ

एन.सी.ई.आर.टी. (1970) : एजुकेशन एण्ड नेशनल डेवेलपमेंट रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन 1964-66 वैल्यूम 03 हायर एजूकेशनः नई दिल्ली।

कुमार जे. और लाल, आर. (1980) : यूज ऑफ माइक्रोटीचिंग इन इम्प्रूविंग जनरल टीचिंग कॉम्पिटेन्सी ऑफ इन सर्विस टीचर्स, हरियाणा, एन.सी.ई.आर.टी.।

यूनेस्को (1985) : एकेडमिक स्टाफ कालेज डेवलपमेंट इन हायर एजुकेशन रिपोर्ट ऑफ ए रीजनल वर्कशाप ऐट यूनिविर्सिटी ऑफ न्यू इंग्लैण्ड, आरमिडल, बैकाकः यूनेस्को।

कुण्डु सी.एल. (1988) : इण्डियन ईयर बुक ऑन टीचर एजुकेशनः स्टारलाइन पब्लिशर्स प्रा.लि., नई दिल्ली।

मा.सं.वि.मं. (1992) : नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन 1986 (विथमोडिफिकेशन अण्डरटेकन इन 1992), न्यू दिल्ली मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिर्सोस डेवलपमेंट।

हड्डिी एम. (1993) : इफेक्टिवनेस ऑफ इन सर्विस ट्रेनिंग प्रोग्राम्स प्रोवाइडेड फार स्पेशल एजुकेशन टीचर इन जार्डन डिशस्ट वैल्यूम।

वी.ए. बेनेकेनाल व साहू (1996) : फोरकास्टिंग नीड्स एंड रिर्सोस पोटेंशियल फॉर इनसर्विस एजुकेशन ऑफ कॉलेज, टीचर्स इन कर्नाटक टूवार्डस 2005, शोध ग्रन्थ-शिक्षा विभाग देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर, म.प्र.।

एन.सी.टी.ई. (2001) : अध्यापक शिक्षा में नीतिगत परिदृश्यः नवीन शाहदरा द्वारा मुद्रितः नई दिल्ली।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढाँचा (एन.सी.एफ.) (2005) : भारत सरकार, नई दिल्ली।

सक्सेना एन.आर., मिश्रा बी.के., मोहन्ती आर0के0 (2008) : अध्यापक शिक्षा-प्रकाशक, विनय रखेजा C/o आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

सिंह रीना व साहू (2010) : उच्च स्तर पर कार्यरत अध्यापक प्रशिक्षण प्रभावशीलता का अध्ययनः अप्रकाशित शोध ग्रन्थ शिक्षाशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

शरतेन्दु दुबे, सत्य नारायण (नवीन संस्करण 2014) : अध्यापक शिक्षा-शारदा पुस्तक भवन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद।

मा.सं.वि.मं. भारत का राजपत्र (राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद अधिसूचना 28 नवम्बर 2014) : नई दिल्ली।

नेशनल पॉलसी आन एजुकेशन (2016) : रिपोर्ट ऑफ द कमेटी फार इवैल्यूएशन ऑफ द न्यू एजुकेशन पॉलसी (30.04.2016) भारत सरकार, नई दिल्ली।

भट्टाचार्य जी.सी. (2016-17) : अध्यापक शिक्षाः अग्रवाल पब्लिशर्स, आगरा।

कुमार बी. व साहू (सितम्बर 2017) : अध्यापक शिक्षकों की वशत्तिक विकास हेतु शिक्षा शास्त्रीय विषय ज्ञान तथा कौशल शिक्षा की आवश्यकता का अध्ययन-पृष्ठ 33-39 (शोध जनरल शिक्षा मित्र, आईएसएसएन नं. 0976.3406) सम्पादक-भागर्व पब्लिकेशन, आगरा।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त, 2017

उच्च माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति

चंद्रकांता जैन* एवं **अखिलेश यादव****

सारांश

इस शोध पत्र में शोध विषय 'उच्च माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का अध्ययन (सागर नगर के संदर्भ में)' पर किया गया है। शोध में जीवसंख्या 32 उच्च माध्यमिक स्तर के 316 शिक्षक एवं शिक्षिकाए हैं, जिनमें से प्रतिदर्श के रूप में 20 उच्च माध्यमिक विद्यालय के 100 शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं का चयन किया गया। प्रतिदर्श का चयन सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन के अंतर्गत लाटरी विधि का उपयोग कर किया गया है। आकड़े संग्रहण हेतु स्वनिर्मित अध्यापक अभिवृत्ति मापनी प्रश्नावली का उपयोग किया गया है। शोध में शोधार्थी द्वारा सांख्यिकी विश्लेषण के रूप में मध्यमान, मानक-विचलन, काई परिक्षण एवं टी-मापनी सांख्यिकी प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। आकड़ा विश्लेषण के पश्चात् प्राप्त परिणामों की दृष्टि से कहा जायेगा कि सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति दिव्यांग छात्रों के प्रति सामान्य है साथ ही पुरुष शिक्षकों की तुलना में महिला शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति सकारात्मक प्राप्त हुई।

मुख्य शब्दः दिव्यांग, शिक्षा, अध्यापक, अभिवृत्ति, समाज

भूमिका

किसी भी समाज की उन्नति में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कराती है। भारत जैसे लोकतंत्रीय देश में शिक्षा की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है जैसा कि

* सहायक प्राध्यापिका, शिक्षा शास्त्र विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश
** एम.एड. प्रशिक्षणार्थी, शिक्षा शास्त्र विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

इमाइल दुर्खिम[1] ने कहा है कि 'शिक्षा वह साधन है जिसके द्वारा समाज बालकों में अपने अस्तित्व की अनिवार्य अवस्था को तैयार करता है' शिक्षा और समाज एक दूसरे से इस प्रकार संबंधित हैं कि कहा जायेगा कि ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। यह एक सर्वविदित सत्य है कि शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास की धुरी होती है। शिक्षा का संबंध सिर्फ साक्षरता से ही नहीं है, बल्कि शिक्षा चेतना और उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करने वाला औजार भी है। शिक्षा को एक मापक या पैमाने के तौर पर देखा जाता है, जिसके आधार पर व्यक्ति, राज्य या देश का मूल्यांकन किया जाता है।

शिक्षा आज विश्व में अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया जब से मानव ने समाज में रहना आरंभ किया है, तभी से अब तक चलती आ रही है। वर्तमान समय में शिक्षा इन तीन अर्थों में समझी जाती है, अतः शिक्षा का अर्थ है-विद्यार्थी की छिपी हुई शक्तियों का विकास करना, उसे ज्ञान या प्रशिक्षण देना, उसके ज्ञान और नैतिकता को इस प्रकार विकसित करना जिससे कि वह अपने पर्यावरण और समाज में समायोजन कर सके और मानव जीवन की सभी संभावनाओं को प्राप्त कर सके।

अध्यापक के महत्व के संबंध में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा है कि ''अध्यापक का समाज में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है, वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक संस्कृतियों और तकनीकी कौशलों को पहुचाने में मुख्य भूमिका अदा करता है, और सभ्यता के दीपक को जलाये रखता है''।[2]

आज के समाज में दिव्यांगों की शिक्षा महत्वपूर्ण है, क्योंकि दिव्यांगता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अभिशाप मानना सहानुभूति-दया आदि की भावना से ग्रसित होकर उनका सर्वांगीण विकास संभव नहीं है, जब तक कि इनके बीच कार्य करने वाले व्यक्तियों, अध्यापकों एवं संचालित कार्यक्रमों का विकास इनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखकर न किया जाए। शिक्षक समाज के सजग प्रहरी, मार्गदर्शक एवं प्रकाश पुंज के रूप में कार्य करता है, इसलिए शिक्षक की भूमिका दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। जैसा की एन.सी.एफ. 2005[3] में बतलाया गया है कि समावेशन की नीति को हर स्कूल और सारी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किए जाने की

[1] रूहेला एस.पी.(2015). शिक्षा का समाजशास्त्र, जयपुर, राजस्थान ग्रंथ अकादमी, पृ. 53

[2] रमन विहारी (2005) शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा, रस्तोगी पब्लिकेशन, पृ. 54.

[3] *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (2005). राष्ट्रीय पाठयचर्या की रूपरेखा 2005. पृ. 96*

ज़रूरत है। बच्चे के जीवन के हर क्षेत्र में वह चाहे स्कूल में हो या बाहर, सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित करनो की ज़रूरत है। स्कूलों को ऐसे केंद्र बनाए जाने की आवश्यकता है जहाँ बच्चों को जीवन की तैयारी कराई जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी बच्चों, खासकर शारीरिक या मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों, समाज के हाशिए पर जीने वाले बच्चों और कठिन परिस्थितियों में जीने वाले बच्चों को शिक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के सबसे ज्यादा फायदे मिले।

सम्पूर्ण भारत में दिव्यंगों की जनसंख्या जनगणना 2011[4] के आधार पर 2.68 करोड़ है जो सम्पूर्ण जनसंख्या 121 करोड़ में 2.21 प्रतिशत है जिनमें दृष्टि बाधित 19 प्रतिशत श्रवण ह्रास 19 प्रतिशत वाक् बाधित 7 प्रतिशत क्रिया आधारित दिव्यांग 20 प्रतिशत मानसिक मंद 6 प्रतिशत, मानसिक बीमार 3 प्रतिशत, बहु दिव्यांग 18 प्रतिशत तथा अन्य प्रकार के दिव्यांग की जनसख्या 18 प्रतिशत है जिसमें से ग्रामीण क्षेत्रो में 69 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में 31 प्रतिशत दिव्यांग निवास करते हैं।

दिव्यांगता की परिभाषा: (जनगणना 2011 के अनुसार) शारीरिक दिव्यांगता से अभिप्राय वह दिव्यांगता है जो कि शारीरिक रूप से हो अर्थात कोई व्यक्ति देखने, बोलने, सुनने या चलने में कठिनाई का सामना करता हो शारीरिक दिव्यांगता को हम चार भागो में बाँटेंगे:

1. दृष्टि दिव्यांगता
2. वाणी दिव्यांगता
3. श्रवण दिव्यांगता
4. चलन क्रिया दिव्यांगता।

दिव्यंगों की साक्षरता स्थिति भारत की साक्षरता दर 73 प्रतिशत के सापेक्ष में मात्र 55 प्रतिशत (1.46 करोड़) है जिसमें से 62 प्रतिशत पुरुष साक्षरता दर एवं 45 प्रतिशत महिला साक्षरता दर राष्ट्रीय साक्षरता दर के अनुपात में निम्नतम स्थिति है जो इनकी दयनीय शैक्षिक स्थिति को इंगित करता है। स्कूल तक पहुच की बात करें तो 5 से 19 वर्ष के संपूर्ण दिव्यंगों में से मात्र 57 प्रतिशत बालक एवं 47 प्रतिशत बालिका तक पहुंच है। सम्पूर्ण दिव्यांग जनसंख्या 2.68 करोड़ में सें 11 प्रतिशत प्राथमिक से नीचे शिक्षा प्राप्त, 12 प्रतिशत प्राथमिक तक शिक्षा प्राप्त, 9 प्रतिशत माध्यमिक तक शिक्षा प्राप्त तथा

[4]स्रोत : राष्ट्रीय जनगणना 2011 के आकड़े, भारत सरकार

मात्र 3 प्रतिशत दिव्यांगों की स्नातक शिक्षा तक पहुच है (जन गणना 2011[5] के अनुसार)। ये आंकड़े हमें ये इंगित करते हैं कि यह समाज आज भी शैक्षिक रूप से मुख्य समाज से काफी पिछड़ा हुआ है।

एक सामान्य बालक को पढ़ाने हेतु प्रशिक्षित अध्यापक शारीरिक दिव्यांग बालकों को शिक्षित करने की विशेष कला से अवगत होता है। वह ऊपरी रूप से शारीरिक दिव्यांग बालकों की सेवा कर सकता है और शिक्षा दे सकता है। शारीरिक दिव्यांग बालकों को ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता है जो उनकी मनोस्थिति को समझते हुए किसी ठोस दर्शन के आधार पर न केवल इनको शिक्षित करे बल्कि इनके सामाजिक, संवेगात्मक और शारीरिक विकास की ओर भी ध्यान दें, क्योंकि अध्यापक का अनुचित व्यवहार उनके मन में, कुंठा की भावना को जन्म देने का कार्य करेगा, जबकि अध्यापक का उचित व्यवहार इस प्रकार के विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने का कार्य करेगा।

दिव्यांग बच्चों की शिक्षा में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, क्योकि समावेशी शिक्षा की कक्षा प्रक्रिया में शिक्षक के दृष्टिकोण (अभिवृत्ति) एवं व्यवहार महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। राम (2014)[6] ने अपने शोध कार्य में पाया कि शिक्षकों का दिव्यांग विद्यार्थियों से प्रश्न न पूछना एवं उनके गृह कार्य की जाँच को अन्य विद्यार्थियों के समान न करना, इस प्रकार का व्यवहार इन बच्चों को बहिष्करण की तरफ धकेलता है। इस प्रकार का शिक्षकों का दृष्टिकोण एवं व्यवहार समावेशी शिक्षा के गठन एवं सफल संचालन में कठिनाई उत्पन्न करता है, सामान्यत: शिक्षक का दृष्टिकोण एवं व्यवहार दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति पूर्ण होता है, जिससे शिक्षक इस प्रकार के विद्यार्थियों को अन्यों से कमजोर समझता है या कहें सीखने लायक नहीं समझता है जिससे ये बच्चे कक्षा में होते हुए भी अपने को कक्षा से अलग पाते हैं। ज्यादातर शिक्षक दिव्यांग एवं अन्य इस प्रकार के विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हैं। फिर भी सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो आज भी दिव्यांगों की उपेक्षा हो रही है। दिव्यांग शारीरिक दृष्टि से भले ही कमजोर होते हैं, लेकिन उनका मस्तिष्क सामान्य व्यक्ति की तरह परिपक्व होता है। इसी कारण अस्थिबाधित दिव्यांगों को सामाजिक आर्थिक समस्या एवं पुनर्वास का अध्ययन कर उनके लिए चलाई जा रही योजनाओं एवं कार्यक्रमों के माध्यम से समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया जाये[7]। जिससे वे अपना जीवन सामान्य व्यक्ति की तरह व्यतीत कर सकें।

[6] www.cencesofindia.com

[7]स्रोत–*http://www.teachersofindia.org/hi/periodicals*

शोध अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

शोध विषय की आवश्यकता इस लिए भी है कि जैसा की युनेस्को[8] (2009.) ने अपने प्रतिवेदन में बतलाया कि दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा में शिक्षकों की अभिवृत्ति एक प्रमुख बाधा है, जो विद्यार्थियों को समावेशी शिक्षा में शिक्षा प्राप्त करने में प्रमुख चुनौती है। दास (2010) ने अपने शोध में बतलाया कि दिव्यांग विद्यार्थियों का सामान्य कक्षा में शिक्षण हेतु शिक्षकों की अभिवृत्ति प्रमुख बाधक है साथ ही ज्यादातर शिक्षक इन विद्यार्थियों को कक्षा में सम्मिलित करने के पक्ष में नहीं हैं। जैसा की कलाम (2014)[9] ने अपने शोध में बतलाया कि शिक्षकों को सहानुभूति के बजाय समानुभूति का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए जिससे इस प्रकार के विद्यार्थी अपने आप को कक्षा में अन्य विद्यार्थियों से भिन्न नहीं समझेंगे। समानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण दिव्यांगों को अन्य विद्यार्थीयों के समान मजबूत बनने में सहायक होता है।

शोध विषय की आवश्यकता इस लिए भी हैं कि उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी किशोरावस्था में होते हैं जो कि जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय होता है। इस स्तर पर शिक्षक कार्य केवल शिक्षण तक सीमित नहीं होता है अपितु मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वाहन करना होता है। उम्र के इस पड़ाव में बालकों के व्यवसायिक एवं सामाजिक निर्देशन की आवश्यकता होती है, क्योंकि वे अपने जीवन काल के सबसे कठिन दौर से गुजर रहे होते हैं। जहां अध्यापकों की भूमिका और भी ज्यादा बढ़ जाती है क्योंकि अध्यापक ही वह साधन है जो बालकों को सही व्यवसायिक एवं सामाजिक निर्देशन प्रदान करके उनके जीवन को सही दिशा प्रदान कर सकता है।

यह अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि दिव्यांगों को सिखाने और भागीदारी में बाधा के रूप में एक अध्यापक का व्यवहार एवं उसकी अभिवृति महत्वपूर्ण होती है। एन.सी.ई.आर.टी. (2009)[10] ने अपनी रिर्पोट में बतलाया कि प्रकृति मानव जीवन का आधार होती है हमारी प्रवृति हमारे विचारों, भावनाओ और जो भी हम करते हैं, को स्पष्ट रूप से प्रभावित करती है। वे वास्तव में हमारे सोचने, महसूस करने और कार्य करने को निर्धारित करती है, प्रवृत्ति वास्तव में किसी कार्य को करने के प्रति तत्परता हैं, परन्तु ये

[8] यूनेस्को. (2009). टुवर्ड इनक्लूसिव एजुकेशन फार चिल्ड्रेन विंथ डिसेविलिटी: गाईडलाइन बैंकाक, यूनेस्को,

[9]स्रोत–*http://www.teachersofindia.org/hi/periodicals/KG*

[10]एन.सी.ई.आर.टी. (2006). पोजिशन पेपर नेशनल फोकस ग्रुप आन एजुकेशन आफ चिल्ड्रेन विंथ स्पेशल नीडस, प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली

अत्यधिक भावनात्मक होती है, क्योकि ये हम जिस प्रकार लोगों एवं चीजो का मूल्यांकन करते हैं, उसको प्रतिबिम्बित करती है, ये हमें यह फैसला करने में मार्गदर्शन करती है, कि हम किसको पसंद या नापसंद करें, किससे बचें और किसे अपनायें। सबसे बड़ी बाधा अध्यापक का रवैया होता है, अगर अध्यापक विशिष्ट आवश्यकता वाले बालक के प्रति नकारात्मक और पक्षपातपूर्ण रवैया रखता है, या ऐसे बालकों की शिक्षा के प्रति उसकी नकारात्मक पहुंच होती है तो समावेशन सफल नहीं हो सकता है, अध्यापकों का व्यवहार भी शिक्षक कार्यक्रमों, कार्यशालाओ और इस क्षेत्र में अन्य लोगों का अनुभव जानकर बदल जाता है।

शोधार्थी इस अध्ययन के द्वारा यह पता लगाने का प्रयास किया है, कि शिक्षकों की अभिवृति का दिव्यांग बालकों की शिक्षा पर किस प्रकार प्रभाव डालता है, सामान्य एवं अस्थि दिव्यांग विद्यार्थियों के समायोजन में विद्यालय की अहम भूमिका रहती है। इसी प्रकार शिक्षक विद्यार्थियों के लिए एक आन्तरिक प्रेरणा का कार्य करते हैं। चूंकि समायोजन एक अर्जित कारक है, इसीलिए यह सदैव सभी के लिए एक समान नहीं रहता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है इसीलिए उसका समायोजन भी अलग-अलग होगा। यदि दिव्यांगता बालक को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है तो उसके व्यवहार एवं विकास में नकारात्मकता का प्रभाव मिलता है। शिक्षकों की अभिवृति में जिम्मेदार उन कारणों का पता लगाकर, जो उनकी शिक्षा एवं अभिप्रेरणा में बाधा उत्पन कर रहे है उन्हें दूर किया जा सकता है।

अनुसंधान के उद्देश्य

- उच्च माध्यमिक स्तर के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन।
- उच्च माध्यमिक स्तर के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पनाऐं

- सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के शासकीय विद्यालय के अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृति सामान्य है।
- सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के अशासकीय विद्यालय के अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृति सामान्य है।

- सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के महिला अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य है।
- सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के पुरूष अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य है ।
- सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के अशासकीय एवं शासकीय विद्यालय के अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के महिला एवं पुरुष अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के शासकीय पुरुष एवं अशासकीय पुरुष अध्यापकों का शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के शासकीय महिला एवं अशासकीय महिला अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

एडिन, हरदिय और आंद्रे कार्टिय (2014) ने विषय 'दिव्यांग लोगों के प्रति वर्तमान अभिवृत्ति' पर रिपोर्ट प्रस्तुत किया, जिसमे इन्होंने पाया कि ब्रिटिश लोगों में 53 प्रतिशत ने बताया कि वे दिव्यांग लोगों के साथ रहने एवं काम करने में असुविधा महसूस करते हैं, और 47 प्रतिशत लोगों ने बताया की इनके साथ रहने में असुविधा होती है परन्तु इनके साथ काम करने में असुविधा नहीं होती है। मार्टिन,एल जान्ड्रो एवं एमिलिया आल्बेरेजर्रेगुई, (2013) ने ''दिव्यांगता के प्रति अभिवृत्ति की पहचान करने के एक पैमाने का विकास एवं सत्यापन उच्च शिक्षा के संदर्भ में'' विषय पर किया। परिणाम में यह पाया कि शिक्षकों एवं छात्रों की अभिवृत्ति दिव्यांगता के प्रति सामान्य है, साथ ही पाया कि प्रत्येक मानसमिति संबंधी (सैकोमिर्टिक) गुणवत्ता का प्रमाण प्रदान करते हैं। ग्राम्स, मौली एवं कार्टन लेवर्टज (2010) ने विषय 'लोगों की दिव्यांगता के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन चीन एवं अमेरिकी छात्रों का तुलनात्मक रूप में' पर शोध किया, परिणामत: पाया कि सामाजिक दृष्टिकोण दिव्यांगजनों के प्रति नकारात्मक है, साथ ही अमेरिकी छात्रों की चीनी छात्रों की तुलना में दिव्यांगों के प्रति अभिवृत्ति सकारात्मक प्राप्त हुई। फिल्डलर,

लाइरा (2007) ने 'दिव्यांग जन के प्रति बहुआयामी अभिवृत्ति का मापन' विषय पर शोध किया। क्रहे, बरबरा एवं कोलेट आल्ववेस्टर, (2006) ने 'शारीरिक दिव्यांग लोगों के प्रति नकरात्मक अभिवृति को बदलना एक प्रायोगिक अध्ययन' विषय पर शोध किया।

एल. जानड्रो मार्टिन एवं एमिलिया आल्वेरेजर्रेगूइ (2013) ने अपने शोध परिणाम के रूप में बतलाया कि सामान्य विद्यालय के शिक्षकों एवं छात्रों की दिव्यांगता के प्रति अभिवृत्ति सामान्य होती है। साथ ही एबिला ओल्लायो (2012) ने अपने शोध परिणाम के द्वारा बतलाया कि महिलायों की अभिवृत्ति पुरुषों की तुलना में सकारात्मक होती है। जो मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध में भी परिलक्षित हुआ है, जब हमने पुरुष अध्यापकों एवं महिला अध्यापिकाओं के मध्यमान ज्ञात किया तो महिला अध्यापिकाओं के मध्यमान पुरुष अध्यापकों के मध्यमान से अधिक प्राप्त हुए जो यह प्रदर्शित करते है, की महिला अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति पुरुष अध्यापकों की अभिवृत्ति से अधिक है, और एवांगलेन कर्न (2006) ने अपने शोध परिणाम में बतलाया कि सामान्य कक्षा के शिक्षकों की अभिवृत्ति दिव्यांगों के प्रति सामान्य है किन्तु उन्हें प्रशिक्षण की आवश्यकता है जिससे उनकी अभिवृत्ति में और परिवर्तन हो सके। इन शोधों से प्राप्त परिणाम मेरे द्वारा किये गए शोध से प्राप्त परिणाम कों प्रमाणित करते है।

शोध अभिकल्प

शोध कार्य को वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय, पक्षपात रहित एवं पूर्वाग्रहों से परे तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संचालित करते हुए शोधार्थी ने वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। प्रस्तुत शोध में प्रतिदर्श चयन की विधि के रूप में सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन के अंतर्गत लाटरी विधि का उपयोग कर प्रतिदर्श चयन किया गया है। क्योंकि यहाँ जीवसंख्या सीमित है, इसलिए प्रतिचयन विधि के रूप में लाटरी विधि का उपयोग किया गया है, साथ ही प्रत्येक प्रतिदर्श के रूप में चयनित विद्यालय के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं का चयन उनकी वरिष्ठता (वरिष्ठ, कम वरिष्ठ) क्रम के आधार पर किया गया है। शोध में जीवसंख्या के रूप में चयनित 32 उच्च माध्यमिक स्तर के 316 अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं में से प्रतिदर्श के रूप में 20 उच्च माध्यमिक स्तर के 100 अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं का चयन किया गया है। प्रस्तुत शोध समस्या के अध्ययन हेतु शोधार्थी द्वारा मापन उपकरण के रूप में ''स्वनिर्मित प्रश्नावली'' का उपयोग किया गया है जिसमे कुल प्रश्नों की संख्या 50 है। इन 50 प्रश्नों में 27 ऋणात्मक प्रश्न एवं 23 धनात्मक प्रश्न हैं। यह प्रश्नावली योग निर्धारण विधि (लिकर्ट विधि) के अनुसार निर्मित

की गई है। यह विधि अभिवृत्ति मापनी निर्माण के स्केल्ड प्रतिक्रिया विधि के अंतर्गत आती है। प्रश्नावली में प्रतिक्रिया देने के पाँच विकल्प यथा- पूर्णतः सहमत, कुछ सहमत, अनिश्चित, कुछ असहमत, पूर्णतः असहमत का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक अर्द्धविच्छेद विश्वसनीयता विधि में प्रथम अर्द्धांश-द्वितीय अर्द्धांश विधि के प्रयोग द्वारा ज्ञात किया गया है। उपर्युक्त परीक्षण का विश्वनीयता गुणांक 0.52 तथा वैधता गुणांक 0.631 प्राप्त हुआ है। शोध में शोधार्थी द्वारा सांख्यिकी विश्लेषण के रूप में सांख्यिकी प्रविधियों - मध्यमान, मानक-विचलन, काई परीक्षण एवं टी-मापनी का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्त विश्लेषण

शोध में परिकल्पना परीक्षण हेतु शोधार्थी ने सार्थकता स्तर 0.01 एवं 0.05 का चयन किया है :

क्र. सं.	परिकल्पनायें	टी-परिक्षण/ काई परिक्षण	सार्थकता स्तर
1.	सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के शासकीय विद्यालय के अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य है।	1.60#	0.05 स्तर पर असार्थक
2.	सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के अशासकीय विद्यालय के अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य है।	6.00#	0.05 स्तर पर सार्थक
3.	सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के महिला अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य है ।	2.33#	0.05 स्तर पर असार्थक
4.	सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के पुरुष अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य है ।	10.20#	0.01 स्तर पर सार्थक
5.	सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के अशासकीय एवं शासकीय विद्यालय के अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।	0.25*	0.0 स्तर पर असार्थक

क्रमशः

6.	सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के महिला एवं पुरुष अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।	1.15*	0.05, स्तर पर असार्थक
7.	सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के शासकीय पुरुष एवं अशासकीय पुरुष अध्यापकों का शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।	1.42*	0.05 स्तर पर असार्थक
8.	सागर नगर के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के शासकीय महिला एवं अशासकीय महिला अध्यापकों की शारीरिक दिव्यांग छात्रों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।	0.33*	0.05 स्तर पर असार्थक

#काई परिक्षण मान, *टी–परिक्षण मान

परिणामों की व्याख्या

प्रस्तुत शोध से प्राप्त आंकड़ों एवं उनके विश्लेषण के पश्चात् निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए हैं :

1. सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के शासकीय विद्यालयों के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य प्राप्त हुई है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि शासकीय उच्च माध्यमिक स्तर के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति अभिवृत्ति सामान्य विद्यार्थियों के समान है।
2. सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य प्राप्त हुई है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि शासकीय उच्च माध्यमिक स्तर के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति अभिवृत्ति सामान्य विद्यार्थियों के समान है।
3. सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के महिला अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य प्राप्त हुई है जिससे यह

प्रदर्शित होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के महिला अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति अभिवृत्ति सामान्य विद्यार्थियों के समान ही है।

4. सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों की दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य प्राप्त हुई है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के अध्यापकों की दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति अभिवृत्ति सामान्य विद्यार्थियों के समान है, साथ ही अगर अध्यापक प्रशिक्षित हो तो लिंग का प्रभाव दिव्यांगों के प्रति अभिवृत्ति पर परिलक्षित नहीं होता है।
5. सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय अध्यापकों और अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति के बीच कोई अंतर नहीं प्राप्त हुआ है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि शिक्षक प्रशिक्षित हो तो विद्यालय शासकीय या अशासकीय होने से शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं होता है।
6. सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के पुरुष अध्यापकों और महिला अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति के बीच कोई अंतर नहीं प्राप्त हुआ है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि शिक्षक लिंग अलग-अलग होने से शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं होता है।
7. सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के शासकीय पुरुष एवं अशासकीय पुरुष अध्यापकों की अभिवृत्ति के बीच कोई अंतर नहीं प्राप्त हुआ है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि एक ही तरह के लिंग होने पर विद्यालयों के अलग-अलग प्रकार होने से अध्यापकों की अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं होता है।
8. सागर नगर के उच्च माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय महिला अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति के बीच कोई अंतर नहीं प्राप्त हुआ है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि एक ही तरह के लिंग होने पर विद्यालयों के अलग-अलग प्रकार होने से अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं होता है।

शोध निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में परिणामों की प्राप्ति एवं परिणामों की व्याख्या के पश्चात् निष्कर्षत: यह कहा जायेगा कि विभिन्न उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति दिव्यांगों की शिक्षा के प्रति सामान्य प्राप्त हुई है, किन्तु परिणामों की प्राप्ति के पश्चात् यह भी कहा जायेगा कि महिला अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति पुरुष

अध्यापकों की अभिवृत्ति से अधिक सकारात्मक प्राप्त हुई है। शासकीय अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति अशासकीय अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की तुलना में अधिक सकारात्मक प्राप्त हुई है। साथ ही शासकीय पुरुष अध्यापकों की अभिवृत्ति अशासकीय अध्यापकों की अभिवृत्ति की तुलना में कम सकारात्मक प्राप्त हुई है। और शासकीय विद्यालय स्तर की महिला अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति अशासकीय विद्यालय स्तर की महिला अध्यापिकाओं से अधिक सकारात्मक प्राप्त हुई है। निष्कर्षतः सभी अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा के अभिवृत्ति में एकरूपता पायी गयी।

अंततः हम यही कहेंगे कि शोध में प्रयोज्य के रूप में सम्मिलित सभी अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य प्राप्त हुई है। जिससे निष्कर्ष रूप में हम यही कहेगे की सागर नगर में स्थित सभी उच्च माध्यमिक विद्यालय के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति सामान्य है।

प्रस्तुत अनुसन्धान का शैक्षिक निहितार्थ

स्टीफन हाकिंग महोदय[11] ने दिव्यांगों के संदर्भ में कहा है कि 'दिव्यांग लोगों को कई बाधाओं का सामना करने के कारण व्यावहारिक शारीरिक और वित्तीय रूप कमजोर हो जाता है। इन बाधाओं को दूर करना हमारी पहुच के भीतर है और ऐसा करना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण इन अवरोधों को समाप्त करना होगा। इन सारे लोगों की क्षमता को खोला जाए जिससे ये दुनिया में अपना योगदान दे सकें प्रत्येक सरकारें लाखों करोड़ों लोग जो अक्षमता से ग्रसित हैं उनकी अनदेखी नहीं कर सकती है। इस वंचित समाज को स्वास्थ्य पुनर्वास समर्थन शिक्षा और रोजगार द्वारा कभी चमकाने का मौका नहीं मिला है। जब तक कि इनके बीच कार्य करने वाले व्यक्तियों, अध्यापकों एवं संचालित कार्यक्रमों का विकास इनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखकर न किया जाए। शिक्षक समाज के सजग प्रहरी, मार्गदर्शक एवं प्रकाश पुंज के रूप में कार्य करता है, इसलिए शिक्षक की भूमिका दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। शिक्षक विद्यार्थियों के लिए एक आन्तरिक प्रेरणा का कार्य करते हैं चूँकि समायोजन एक अर्जित कारक है, इसीलिए यह सदैव सभी के लिए एक समान नहीं रहता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है इसीलिए उसका समायोजन भी अलग-अलग

[11]फारेले, पी. (2012) इक्लूसिव एजूकेशन फॉर ऑल : अ ड्रीम और रियल्टी पृ. 12,

होगा। यदि दिव्यांगता बालक को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है तो उसके व्यवहार एवं विकास में नकारात्मकता का प्रभाव मिलता है।

कक्षा का वातावरण भेदभाव रहित सभी सीखने वाले के अनुकूल होना चाहिए जैसा एन.सी.एफ. 2005[12] में बतलाया गया हैं कि 'सावर्जनिक स्थल के रूप में स्कूल में समानता, सामाजिक विविधाता और बहुलता के प्रति सम्मान का भाव होना चाहिए, साथ ही बच्चों के अधिकारों और उनकी गरिमा के प्रति सजगता का भाव होना चाहिए। इन मूल्यों को सजगतापूर्वक स्कूल के दृष्टिकोण का हिस्सा बनाया जाना चाहिए और उन्हें स्कूली व्यवहार की नींव बनना चाहिए। सीखने की क्षमता देने वाला वातावरण वह होता है जहाँ बच्चे सुरक्षित महसूस करते हैं, जहाँ भय का कोई स्थान नहीं होता और स्कूली रिश्तों में बराबरी और जगह में समता होती है।'

अध्यापक शब्द बालक के जीवन में बहुत अधिक महत्व रखता है, अध्यापन पेशा या व्यवसाय नहीं बल्कि समाज के प्रति सेवा के लिये समर्पण है, एक शिक्षक ही देश को स्वावलम्बी बनाकर बुलंदी पर पहुचता है। अध्यापक ही अपने बालकों में चरित्र निर्माण, व्यवहार आदि में परिवर्तन करके व्यक्तित्व का निर्माण करता है। बालक को सही मार्गदर्शन अध्यापक द्वारा ही सम्भव है, शिक्षा की व्यवस्था की सफलता अध्यापक पर निर्भर करती है, एक अच्छा शिक्षक ही अच्छे समाज का निर्माण करता है।

संदर्भ

दास, बी.एन. (2007) विशिष्ट बालकों के लिए शिक्षा, दिल्ली, अंजता प्रकाशन, पृ. 123, 228

डॉ. भार्गव, महेश, (2008) विशिष्ट बालक, आगरा, भार्गव बुक हाऊस पृ. 220,321

गुप्ता अलका (2015) यू.जी.सी. राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा शिक्षा शास्त्र, इलाहबाद, शारदा पुस्तक भवन पृ. 459-626,1055-1072

गुप्ता एस.पी. (2015) आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, इलाहबाद, शारदा पुस्तक भवन पृ. 279 से 319, 114 से 142

डॉ. सुलैमान, मुहम्मद (2016) मनोविज्ञान शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास पृ. 100-130 एवं 160-183, 286-307 तक

भार्गव, महेश (2010) मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, आगरा, एच पी भार्गव बुक हाउस पृ. 119,140

मंगल, एस.के. (2015) रिसर्च मेथोलाजीय इन विहैवियर साइंस, दिल्ली पी.एच.आई, लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, पृ. 391,419

[12]राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी

गुप्ता, एस.पी. (2015) अनुसंधान संदर्शिका, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन

कुमार कृष्ण (2013) राज समाज और शिक्षा, इलाहबाद, राजकमल प्रकाशन

लाल, रमन बिहारी, (2001) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार, मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन

राम, पी.एस. (1992) जूनियर हाईस्कूल कक्षाओं में अध्ययनरत अंध मूक-बधिर एवं सामान्य बालकों के समायोजन, व्यक्तित्व, स्वास्थ्य एवं समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबंध, सागर, शिक्षा शास्त्र विभाग, डा. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, म.प्र.

रंजन, दीपक (2016) *'विकलांगजन : शारीरिक पुनर्वास व संस्थागत प्रयास'*, लघु शोध प्रबंध, सागर, शिक्षा शास्त्र विभाग, डा. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

कुमार, पवन (2010) *''सामान्य एंव दिव्यांग किशोर/किशोरियों के सांवेगिक परिपक्वता का अध्ययन''*, लघु शोध प्रबन्ध, सागर, शिक्षा शास्त्र विभाग, डा. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

वाला, एम. (1985), ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ द मेंटल मेक-अप एण्ड एजुकेशन फैसिलिटी फार फिजिकल हैंडीकैप एण्ड नार्मल चिल्ड्रन, पी-एच.डी, एडु. कुर. यूनि. 1985, इन फोर्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, 1983-88, दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी., वाल्यूम-11,

शर्मा, संदीप (2007) भारत में दिव्यांगों की शिक्षा की एक हिस्टोरिकल बैकग्राउंड, रिसर्च एसोशिएट एजुकेशनल सर्वे एण्ड डाटा क्लैक्शन डिपार्टमेंट, नई दिल्ली, एनसीईआरटी

कुमारी, शारदा (2009) इक्ल्यूसिव विद्यालय वातावरण और कोमल की जरूरते-प्रथमिक शिक्षा, दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी.

कपिल एच.के. (2011) अनुसंधान विधियाँ, आगरा, एच.पी. भार्गव बुक हाऊस

सिंह, अरुण कुमार (2014) मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास

सक्सैना, एन.आर. स्वरूप,(2008). *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*, मेरठ, आर.लाल बुक डिपो, लाल

बिहारी, रमन लाल (2008). *भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याए*, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो

सिंह, अरुण कुमार, (2014). *शिक्षा मनोविज्ञान*, पटना, भारती भवन पब्लिशर्स

लाल, मदन (2003) *समेकित शिक्षा*, दिल्ली अजंता प्रकाशन

डॉ. पाण्डेय, रामसकल (2000). *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर

एन.सी.आर.टी (2015) *भारत में दिव्यांगों की शिक्षा एक हिस्टोरिकल बैक ग्राउन्ड*, नई दिल्ली, प्राप्ति स्रोत *<http/:www.ncert.nic.in, 19.03.2016, 26.01.2017*

राव इंदुमती, (2016) विकलांग जन शैक्षिक अधिकार व अवसरों का उन्नयन, नई दिल्ली, योजना पत्रिका प्रकाशन विभाग भारत सरकार

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त, 2017

शोध टिप्पणी/संवाद

दिव्यांग बच्चों के प्रति शिक्षामित्रों का दृष्टिकोण
एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

शिव कुमार*

सारांश

दिव्यांग बालकों के लिए प्रेरणा बहुत आवश्यक है। यह देखना चाहिए कि वह किसी कार्य को करते है तो उन्हें किसी प्रकार की प्रेरणा प्राप्त हो रही है। दिव्यांग बालकों को समस्या किसी एक या अधिक क्षेत्रों में हो सकती है। इस परिपेक्ष्य में शिक्षामित्रों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है क्योंकि यह प्राथमिक स्तर के शिक्षक होते हैं। शिक्षामित्र जितना अधिक दिव्यांग बालकों के प्रति धनात्मक दृष्टिकोण और जागरूक होंगे, दिव्यांग बालकों की शिक्षा में आ रही समस्याओं को उतना ही जल्दी दूर किया जा सकेगा। प्रमुख शब्द हैं: दिव्यांग बालक, विशिष्ट शिक्षा, शिक्षामित्र, सकारात्मक दृष्टिकोण, नकारात्मक दृष्टिकोण, विकलांगता, शिक्षक जागरूकता।

भूमिका

शिक्षा अनवत रूप से चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा अच्छे जीवन स्तर के लिए मानव व्यवहार को नियन्त्रित करती है। साथ ही व्यवहार में परिवर्तन लाने में सहायक होती है। समाज के प्रत्येक सदस्य का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपनी क्षमताओं व योग्यताओं का अधिकतम सीमा तक विकास करके समाज की उन्नति व प्रगति में अपना योगदान दें। कुछ व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास सामान्य शिक्षा के द्वारा होता है। लेकिन प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो किसी कारणवश शारीरिक व मानसिक रूप से

* सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

कार्य करने में दिव्यांग होते हैं जिससे वे समाज की उन्नति में अपना योगदान दे सकने में आंशिक या पूर्ण रूप से असमर्थ होते हैं। ऐसे व्यक्तियों को शिक्षित करने के लिए विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है। विशिष्ट बालकों की पहली आवश्यकता यह होती है कि उनके विशिष्ट गुणों, क्षमताओं और कमियों के आधार पर उनके अनुकूल शिक्षा व प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए ताकि वे समाज में अपने आपको समायोजित कर सकें और समाज उनसे लाभान्वित हो सके।

सामान्य मानव का विकलांग मानव के प्रति व्यवहार मानव के स्वभाव की विवेकशीलता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। आज समाज का दृष्टिकोण विकलांगता के प्रति उचित नहीं है। परन्तु इस बात के अनेकानेक प्रमाण हैं कि विकलांगता अयोग्यता की निशानी नहीं है।

आज अनेक क्षेत्रों एवं प्रतियोगिताओं में विकलांग व्यक्तियों ने जो प्रदर्शन कर दिखाया है, वह सामान्य व्यक्तियों की योग्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। विकलांगता के प्रति ध्यानाकर्षित करने के लिए 1981 को 'अन्तर्राष्ट्रीय विकलांगता वर्ष' घोषित किया गया। सही मायनों में इसी घोषणा ने सामान्य लोगों का ध्यान विकलांग लोगों के प्रति आकर्षित किया। अन्तर्राष्ट्रीय विकलांगता वर्ष का प्रमुख उद्देश्य सामान्य लोगों में विकलांगता के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति का विकास करना, विकलांगों को समाज में उचित स्थान प्रदान करना तथा सामाजिक क्रियाओं में उन्हें सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार करना था। इस अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष ने हमें उन महान नायकों के बारे में भी अवगत कराया जो विकलांग तो थे, परन्तु विश्व में उन्होंने अपना अलग स्थान प्राप्त किया। जैसे महान कवि जॉन मिल्टन अन्धे थे, महान योद्धा तैमूर चलने मे असमर्थ थे और नैपोलियन बौने थे।

समान परिस्थितियों में समाज विकलांगों के प्रति उचित दृष्टिकोण नहीं रखता है। भारत में विकलांगों की दशा में सुधार लाने के लिए अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। फिर भी संसाधनों की कमी एवं निम्न जागरूकता स्तर के कारण लागू किये जाने वाले कार्यक्रम पूर्णतः सफल नहीं हो पा रहे हैं। विकलांगों के उत्थान एवं पुनर्वास के अधि ाकांश केन्द्र एवं संस्थायें नगरों एवं बड़े शहरों में स्थित हैं। और इसके कारण इनका लाभ ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को नहीं मिल पा रहा है।

यदि हमारे प्रयासों से विकलांगों के प्रति समाज के दृष्टिकोण में धनात्मक परिवर्तन होता है तो यह परिवर्तन उनके विकास के लिए एक नये अध्याय की

शुरूआत कर सकता है। अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी विकलांगों की दशा सोचनीय है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं सार्थकता

आज भौतिक युग ने मानवीय गुणों से मानव के संबंध विच्छेद की शुरूआत कर दी है। इससे मानव का विकलांगों के प्रति व्यवहार प्रभावित होता है जबकि विकलांग बालक भी योग्यता में किसी से कम नहीं होते हैं। दिव्यांगता की गम्भीरता के आधार पर इन बालकों के शिक्षक की अभिवृत्तियां कई प्रकार की हो सकती हैं। कुछ शिक्षक दिव्यांग बालकों के साथ अपने को समायोजित कर लेते है और वे बालक की इस दिव्यांगता को अपने लिए एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं। ये शिक्षक दिव्यांग बालकों के साथ एक विशिष्ट प्रकार का सुख प्राप्त करते हैं जिससे वे बड़े धैर्य, स्नेह, सद्भावना, प्रेम तथा त्याग के साथ इन बच्चों को शिक्षा प्रदान करते हैं और इनके साथ समायोजन का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार में माता-पिता के साथ-साथ शिक्षक भी होते हैं जिनका व्यवहार दिव्यांग बालकों के प्रति नकारात्मक एवं सकारात्मक, दोनों प्रकार का हो सकता है। जहां बालकों के प्रति माता-पिता व शिक्षक का सकारात्मक व्यवहार एवं इनका अनुकूल दृष्टिकोण दिव्यांग बालक के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है, वहीं नकारात्मक व्यवहार उनके उत्थान के मार्ग को अवरूद्ध कर सकता है। शिक्षामित्रों के दृष्टिकोण के इस महत्व को देखते हुए दिव्यांग बालको के प्रति शिक्षामित्रों के दृष्टिकोण के अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई है क्योंकि पहले से ही दिव्यांग बालक समाज से उपेक्षित रहे हैं और उनका दृष्टिकोण सकारात्मक कम तथा नकारात्मक ज्यादा रहा है। शिक्षामित्रों के दृष्टिकोण पर शोध करना एवं परिणामों से समाज, माता-पिता व शिक्षक व अन्य विचारशील व्यक्तियों को अवगत कराना शोधकर्ता का सामाजिक, व्यक्तिगत एवं नैतिक कर्तव्य हो जाता है।

समस्या कथन

दिव्यांग बच्चों के प्रति शिक्षामित्रों का दृष्टिकोण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन।

कठिन शब्दों का परिभाषीकरण

प्रस्तुत अध्ययन मे भी कुछ इस प्रकार के शब्द सम्मिलित हैं जिनका अर्थ निम्न प्रकार है-

शिक्षामित्र : प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों की कमी को पूरा करने के लिए राज्य सरकार द्वारा संविदा के आधार पर संबंधित ग्राम सभा के सबसे योग्य युवक को 30 दिन का प्रशिक्षण देकर शिक्षण कार्य के लिए नियुक्त किया जाता है। इन्हीं को शिक्षामित्र कहते हैं।

दृष्टिकोण : साधारण शब्दों मे दृष्टिकोण से हमारा तात्पर्य व्यक्ति के उस दृष्टिकोण से है जो किसी व्यक्ति, वस्तु, संस्था अथवा स्थिति के प्रति किसी विशेष प्रकार के व्यवहार को इंगित करता है। अन्य शब्दों में दृष्टिकोण उन व्यक्तिगत प्रवृत्तियों की ओर संकेत करती है जिनके द्वारा किसी निश्चित वस्तु, व्यक्ति या स्थिति के प्रति व्यक्ति व्यवहार का निर्णय लिया जाता है।

शोध का सीमांकन

प्रस्तुत शोध का क्षेत्र काफी विस्तृत है परन्तु समय के अभाव एवं संसाधनों की कमी के कारण अध्ययन का सीमांकन करना शोधार्थी के लिए आवश्यक है।

- प्रस्तुत शोध जिला पीलीभीत के बीसलपुर क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों में किया गया है।
- प्राथमिक विद्यालयों में राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किये गये कार्यरत शिक्षामित्रों के दृष्टिकोण का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

दिव्यांग बच्चों के प्रति शिक्षामित्रों के दृष्टिकोण का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

न्यादर्श एवं न्यादर्श विधि

प्रस्तुत अध्ययन में पीलीभीत जनपद के विकास खण्ड बीसलपुर के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षामित्रों को न्यादर्श के रूप में लिया गया है। अध्ययन के न्यादर्श चयन के लिए साधारण यादृच्छिक न्यादर्शन विधि का उपयोग किया गया है।

उपकरण एवं फलांकन प्रक्रिया

शिक्षामित्रों का दिव्यांग बालकों के प्रति दृष्टिकोण के मापन के लिये कोई मानकीकृत परीक्षण उपलब्ध नहीं है जिससे कि दिव्यांग बालकों के प्रति शिक्षामित्रों की अभिवृत्ति का मापन किया जा सकता है। अतः अध्ययन के आवश्यकतानुसार शोधकर्ता ने दिव्यांग बालकों के प्रति शिक्षामित्रों के दृष्टिकोण मापनी का निर्माण किया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

शोधकर्ता ने प्राप्त तथ्यों की विवेचना की स्पष्टता हेतु चुने गये शिक्षामित्रों के न्यादर्श के परिणाम के आधार पर अंकों की गणना की। मापनी से प्राप्त रॉ स्कैंर का विश्लेषणात्मक अध्ययन मापनी के प्रत्येक कथन के अनुसार किया गया है। शिक्षामित्रों का दिव्यांग बालकों के प्रति दृष्टिकोण के रॉ स्कैंर को प्रतिशत में निम्न प्रकार सारणीबद्ध व विश्लेषण किया गया है :

पद विश्लेषण तालिका–1 अ (1–12)

पद 1–12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
शिक्षामित्रों का दृष्टिकोण % में	99	100	68	96	80	92	96	92	68	80	68	72

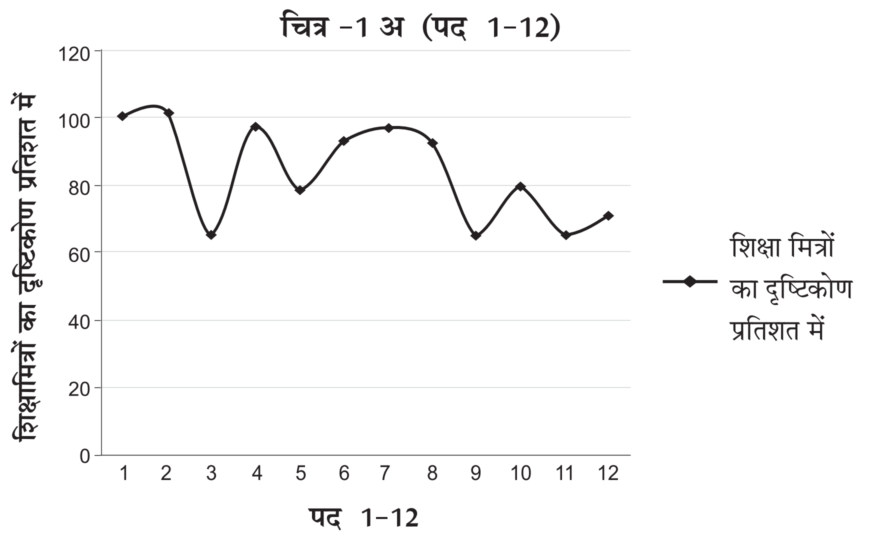

पद विश्लेषण तालिका–1 ब (13–25)

पद 13–25	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25
शिक्षामित्रों का दृष्टिकोण % में	100	88	88	60	96	52	60	86	80	56	60	92	96

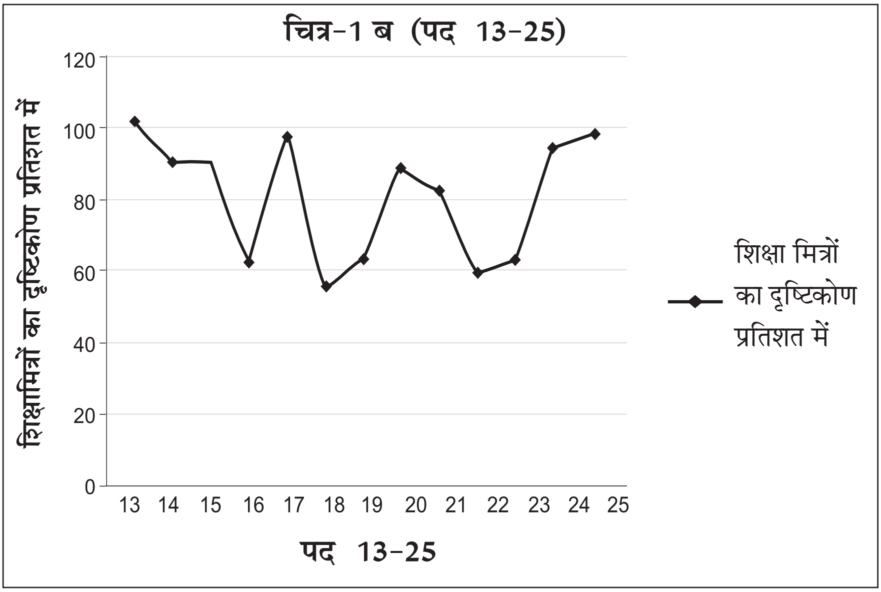

उपरोक्त पद विश्लेषण तालिका–1अ (1–12) एवं पद विश्लेषण तालिका–1ब (13–25) के अध्ययन से अधिकांश शिक्षामित्रों का दिव्यांग बच्चों के प्रति दृष्टिकोण में काफी उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है। दृष्टिकोण के घटते–बढ़ते क्रम को चित्र संख्या चित्र –1अ एवं चित्र–1ब की मदद से आसानी से समझा जा सकता है।

निष्कर्ष

प्रदत्तों के विश्लेषण एवं विवेचन के फलस्वरूप प्रस्तुत शोध से निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए :

(अ) लगभग सभी शिक्षामित्र दिव्यांग बालकों को पहचानने व विशिष्ट शिक्षा देने एवं विद्यालय भेजने के प्रति पूर्ण रूप से सहमत हैं। वे उनका सर्वांगीण विकास करना अपना दायित्व मानतें हैं एवं उनके भविष्य के बारे में सोचने से सहमत हैं और वे यह भी मानते हैं कि वे देश की उन्नति में सहायक होते हैं। उनके साथ समान व्यवहार करने एवं उन्हें सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित करने के पक्ष में हैं। वे इन बालकों की शिक्षा व चिकित्सा पर पैसा खर्च करने को उचित एवं उनको घर परिवार पर बोझ नहीं मानते हैं।

(ब) अधिकांश शिक्षामित्र दिव्यांग बालकों को दया का पात्र एवं विद्यालय की प्रगति में बाधक नहीं मानते हैं। मगर वे यह मानते हैं कि इन बालकों के कारण

परिवार की सामाजिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। वे उनकी उपस्थिति में स्वयं को अकेला महसूस नहीं करते हैं। लेकिन इस बात को मानते हैं कि इन बालकों की भावनाओं को समझने की आवश्यकता होती है एवं उनको खेलने में समान अवसर प्रदान करने के पक्ष में हैं।

(स) बहुत से शिक्षामित्र दिव्यांग तथा सामान्य बालकों को अलग-अलग कक्षा में शिक्षा देने के पक्ष में हैं एवं वे ये मानते हैं कि वे परिवार में उचित रूप से समायोजित होते हैं। वे उनको सामान्य बालकों की ही तरह प्रतिभाशाली एवं उनकी समस्याओं के निराकरण में अध्यापकों की भूमिका को मानते हैं।

(द) कुछ ही शिक्षामित्र मानते हैं, कि दिव्यांग बालकों की रूचियों को विकसित किया जा सकता है तथा वे इन बालकों को सामान्य बालकों की प्रगति में बाधक नहीं मानते हैं।

(य) बहुत कम शिक्षामित्र ये मानते हैं कि दिव्यांग बालक अपनी दिव्यांगता को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करते हैं और सामान्य बालक अपने दिव्यांग भाई-बहिन के प्रति अपमानजनक व्यवहार करते हैं।

शैक्षिक उपयोगिता

दृष्टिकोण का व्यक्ति की चिन्तन प्रक्रिया से सीधा संबंध होता है। व्यक्ति का व्यवहार दृष्टिकोण से प्रभावित होता है। एक व्यक्ति की किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति जैसा दृष्टिकोण होता है, उसी के अनुरूप वह कार्य करता हैं। ठीक इसी प्रकार दिव्यांग बालकों के प्रति शिक्षामित्रों का व्यवहार उनके दृष्टिकोण को नियंत्रित करता है।

दृष्टिकोण के इस महत्वपूर्ण आयाम को देखते हुए हमारा दायित्व बन जाता है कि ऐसे प्रयास किये जाएं जिससे दिव्यांग बालकों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास किया जा सके। दिव्यांग बालकों के प्रति कैसा व्यवहार हो, कैसे उन्हें उत्थान हेतु प्रेरित किया जाए, हमारे पाठ्यक्रम के अंग होना चाहिए।

विभिन्न प्रचार तंत्रों के माध्यमों से दिव्यांग बालकों के प्रति दृष्टिकोण के निर्माण का प्रयास होना चाहिए। ऐसे पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्य को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जो समाज में इनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का निर्माण कर सकें।

संदर्भ

बेस्ट, जे डब्ल्यू (2002); रिसर्च इन एजूकेशन, प्रेंटिश हाल, नईं दिल्ली

बुच, एम.बी. (1987); थर्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन, एन.सी.ई.आर.टी., नईं दिल्ली

बुच, एम.बी. (1991); थर्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन, एन.सी.ई.आर.टी., नईं दिल्ली

गुप्ता एवं सनेवाल (2000); एटीटयूड आफ टीचर्स टूवार्ड्स हीयरिंग एन्ड स्पीच इम्पेयर्ड चिल्ड्रेन; ए कम्परेटिव स्टडी, द प्राइमरी टीचर वाल्यूम 25 नं.2.

खान, जैनुअल (2011); अ स्टडी आफ द एटीटयूड आफ द टीचर्स एंड पैरेंट्स टूवार्ड्स इन्क्लूसिव एजूकेशन एन्ड द इफैक्ट आफ इन्क्लूजन आन अचीवमेंट आफ चिल्ड्रेन बिद स्पेशल नीड्स पीएचडी एजूकेशन, एम.जे.पी.रू.वि.वि, बंरली

लता, के. (1985); इम्पैक्ट आफ पैरेंटल एटीट्यूड आन सोशल इमोशनल एंड एजूकेशनल एडजस्टमेंट आफ नार्मल एन्ड हैंडीकैप्ड स्टूडेंट पीएचडी साइको, आगरा वि.वि

पांडा, बी.के. (1988); एटीटयूड आफ पैरेंटस एन्ड कम्युनिटी मैम्बर्स टूवार्ड्स डिसएबल्ड चिल्ड्रेन पीएचडी होम साइंस, उत्कल वि.वि

सिंह, मुबारक (2010); एजूकेशन ऑफ चिल्ड्रेन विद स्पेशल नीड्स, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त, 2017

शोध टिप्पणी/संवाद

मदरसे में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अध्ययन

शमीमा अंसारी* एवं **शिरीष पाल सिंह****

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में मदरसे की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य मदरसे की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अध्ययन करना था। प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोधार्थी ने नृजातीय अध्ययन किया है। प्रस्तुत शोध के लिए सौद्देश्यपूर्ण विधि द्वारा मदरसा गौसिया, वाराणसी के 30 विद्यार्थी तथा 4 शिक्षकों का चयन किया गया। प्रदत्तों के संकलन हेतु स्वनिर्मित ''शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया अवलोकन अनुसूची'' का निर्माण किया गया। शोध कार्य के उद्देश्य (मदरसा शिक्षा व्यवस्था में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अध्ययन करना) की पूर्ति हेतु प्रतिभागी अवलोकन के द्वारा आंकड़ों का संग्रहण किया गया। आंकड़ों के संग्रहण के पश्चात उनका गुणात्मक विश्लेषण एवं विवेचन किया गया है। आंकड़ों के विश्लेषण से यह पाया गया कि मदरसे में प्रभावशाली शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया संचालित हैं परंतु आधुनिक विषयों के प्रति उदासीनता है।

मदरसे मुस्लिम शिक्षा के केंद्र होते हैं। इसके दो मुख्य अभिकरण हैं- मकतब तथा मदरसा। मकतबों में प्रारंभिक शिक्षा दी जाती है जबकि मदरसों में उच्च शिक्षा प्रदान की जाती है। ये प्राय: दो अर्थों में लिए जाते हैं- सामान्य अर्थ में विद्यालय तथा दूसरे अर्थ में एक ऐसा शिक्षा संस्थान जो धार्मिक शिक्षा प्रदान करता है, लेकिन ये केवल हदीस

* शोध छात्र, शिक्षा पीठ, महात्मा गांधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र-442001
* सह-प्रोफेसर, शिक्षा पीठ, महात्मा गांधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र-442001

और कुरान तक ही सीमित नहीं हैं। (इन्साईक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम,1974)। अर्थात यह धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष दोनों ही प्रकार की शिक्षा प्रदान करते हैं। मदरसा मूलतः अरबी भाषा के दर्स शब्द से बना है जिसका अर्थ है किसी को कुछ पढ़ाना/सिखाना (अलजुनैद और हुसैन, 2005)। वह संस्थान जो दसवीं तक की शिक्षा प्रदान करते हैं, उन्हें मदरसा कहते हैं। दारुल-उलूम शब्द का उपयोग बारहवीं की इस्लामिक शिक्षा के लिए किया जाता है, इसी प्रकार जामिया शब्द विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के लिए उपयोग किया जाता है (रियाज, 2008)। संक्षेप में ऐसा कोई संस्थान जो इस्लामिक मूल की कुरान की शिक्षा प्रदान करता है, मदरसा कहलाता है। इनका उद्देश्य आलिम का निर्माण करना होता है, जो इस्लामिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर लोगों की खिदमत करे (बानो, 2008)। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मदरसा एक ऐसी संस्था है, जहाँ शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया चलती है। चूँकि मदरसा शिक्षा का मुख्य कार्य परम्परागत इस्लामिक शिक्षा का प्रसार करना है, इसलिए मदरसा शिक्षा और उसके उद्देश्यों को समझने के लिए ये आवश्यक है कि इस्लामिक शिक्षा को समझा जाये। इससे हमें मदरसा शिक्षा को समझने में मदद मिलेगी।

इस्लाम में शिक्षा

इस्लाम पूर्णतः अल्लाह के प्रति समर्पण है और मुसलमान वह है जो समर्पण करता है जबकि कुरान इस्लाम और इस्लामिक शिक्षा का केंद्र है एवं यह सभी प्रकार की इस्लामिक शिक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। कुरान के अतिरिक्त इस धर्म के प्रवर्तक हजरत मोहमद साहब का इस्लामिक शिक्षा व्यवस्था में एक बेशकीमती स्थान है (सिकंद, 2004)। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इस्लामिक ज्ञानमीमांसा धर्म और आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है (अल-जीरा, 2001)। इस्लाम में शिक्षा पर बहुत बल दिया गया है, पवित्र ग्रन्थ कुरान के अनुसार शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। मुहम्मद साहब के अनुसार ज्ञान की खोज करो, चाहे इसके लिए चीन ही क्यों न जाना पड़े (मिया साहिब, 1991) कुरान की पहली आयत ही इकरा से शुरू होती है जिसका अर्थ है पढ़ना। कुरान में कहा गया है कि प्रत्येक मर्द और औरत को शिक्षा हासिल करना अनिवार्य है। अशिक्षित व्यक्ति एक मरे हुए इंसान की तरह है अर्थात वह शारीरिक तौर पर तो जिंदा है लेकिन उसकी रूह मर चुकी है। शिक्षा पर जोर देते हुए कहा गया है कि शिक्षा माँ की गोद से शुरू होकर कब्र तक हासिल की जाये, जिसे अरबी में 'लहद से लेकर अहद' तक कहा गया है (साजिद कासमी, 2005)। इसलिए मुसलमानों को

शिक्षित करने के लिए एक सामूहिक प्रणाली विकसित की गयी जिसे मदरसा शिक्षा प्रणाली कहा जाता है।

मदरसा शिक्षा के उद्देश्य

मदरसा शिक्षा का उद्देश्य इस्लामिक विश्वास के मूल सिद्धांत को सीखने से है। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए कुरान की शिक्षा दी जाती है, जिसके लिए रटंत विधि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार मदरसा शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करना है ताकि विद्यार्थी को कुरान और शरीयत के द्वारा निर्धारित मार्ग का अनुसरण कर सकें और मानव जाति के ज्ञान और बौद्धिक विकास के लिए उन तक खुदा का संदेश पहुचाएं (खान, 2002)।

मदरसे के शिक्षक एवं विद्यार्थी

मदरसों में अधिकांश विद्यार्थी ऐसे घरों से आते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होती है और ऐसे परिवारों के लिए शिक्षा का एकमात्र साधन मदरसा होता है क्योंकि मदरसा नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करने के साथ ही रहने और खाने की व्यवस्था भी नि:शुल्क प्रदान करता है। इस प्रकार मदरसा वंचित मुस्लिम समुदाय की साक्षरता के विकास में एक अहम भूमिका अदा करता है। कई लेखकों ने यह स्वीकार किया है कि मदरसा के विद्यार्थियों के लिए रोजगार की व्यवस्था वास्तव में एक चिंता का विषय है क्योंकि विद्यार्थी गरीब परिवारों से आते हैं और उनके माता पिता इस उम्मीद से उन्हें मदरसों में भेजते हैं कि वे अपनी शिक्षा पूर्ण कर लेने के बाद आजीविका के साधन के रूप में मस्जिद के इमाम या अन्य मदरसों में शिक्षक बन जायेगें (सिकंद, 2008)।

दुर्भाग्य से अधिकांश मदरसों के शिक्षक अप्रशिक्षित हैं और उनके सेवाकालीन प्रशिक्षण का भी कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए मदरसा शिक्षक शिक्षा की नवाचारी तकनीकों से अनभिज्ञ हैं। वर्तमान में कई मदरसों के प्रबंधकों ने इस समस्या के समाधान के लिए मदरसों में तीन दिन का सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम, अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या कार्यक्रम का आयोजन किया है। इन कार्यक्रमों में शिक्षा के दर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षण पद्धति पर प्रकाश डाला जाता है (परवीन, 2017)।

मदरसे में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से तात्पर्य शिक्षक एवं विद्यार्थी की सीखने से सम्बंधित अंत:क्रिया से है। विधार्थियों के समय का सर्वोत्तम उपयोग तथा शिक्षकों के संसाधन का सकारात्मक

प्रभाव इस प्रक्रिया पर पड़ता है। मदरसे में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का अर्थ एक ऐसी विधि से है, जिसमें शिक्षक एवं विद्यार्थी, दोनों सम्मिलित होते हैं। शिक्षण अधिगम की विभिन्न विधियाँ जो कि कक्षा के दौरान विद्यार्थियों में रुचि पैदा करने का काम करती है तथा उनके कौशल विकास के लिए सहायक सिद्ध होतीं है। इसके लिए निम्न विधियाँ प्रस्तावित हैं–भाषण विधि, प्रयोगशाला एवं कक्षा अभ्यास, ट्यूटोरियाल, सेमिनार, अभ्यास कार्य, स्वतंत्र अधिगम कार्य, कंप्यूटर आधारित अधिगम आदि के द्वारा शिक्षण को प्रभावी बनाने के प्रयास किए जाते हैं। परंतु अधिकांश मदरसों में शिक्षण कार्य परंपरागत शिक्षण विधि के द्वारा ही सम्पन्न होता है।

शोध का औचित्य

प्रस्तुत शोध समस्या का औचित्य निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है। मदरसा शिक्षा से संबंधित अन्य शोध कार्य जैसे– मदरसे की आधारभूत संरचना, शिक्षकों के प्रशिक्षण मदरसे के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, विकास, समाज पर प्रभाव एवं मदरसे के आधुनिकरण आदि से संबंधित अध्ययन कार्य तो अवश्य हुए हैं लेकिन शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से संबंधित शोध कार्य नहीं हुए हैं। अत: शोधार्थी को इस तरह के शोध कार्य करने की जरूरत महसूस हुई। प्रस्तुत शोध कार्य के द्वारा कक्षा में छात्रों के सीखने की प्रक्रिया का भी पता चला। शोधार्थी के इस शोध ने मदरसा शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान परिस्थिति को दृष्टिगत किया। मदरसा शिक्षा भारत समेत विश्व की प्राचीन शिक्षा पद्धति है। भारतीय जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मदरसे में शिक्षा प्राप्त करता है। शिक्षा का अधिकार के अधिनियम के अंतर्गत राज्य का यह कर्त्तव्य है कि प्रत्येक बच्चे का नामांकन एवं उनकी शिक्षा सुनिश्चित करे इसके लिए यह आवश्यक है कि मदरसा शिक्षा के उद्देश्य तथा उसकी सफल एवं असफल शिक्षा व्यवस्था को समझा जाए। वर्तमान में शिक्षा समय के साथ परिवर्तित हो रही है नयी–नयी शिक्षण पद्धतियाँ, नवाचार, एवं शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग किया जा रहा है तो मदरसा शिक्षा किस हद तक इस आधुनिक शिक्षा के अनुरूप है एवं साथ ही नवाचारों के प्रति मदरसा के शिक्षक एवं छात्र क्या अभिवृत्ति रखते हैं और क्या वजह है यह अभी भी मुख्यधारा में नहीं आ पायी है। अत: प्रस्तुत शोध के परिणाम से मदरसा शिक्षा की वास्तविक स्थिति का पता चलेगा तथा मदरसा शिक्षा के प्रति लोगों की धारणा में परिवर्तन आने की संभावनाएं होंगी।

शोध का उद्देश्य

मदरसा शिक्षा व्यवस्था में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का नृजातीय अध्ययन करना।

शोध का परिसीमन

- प्रस्तुत शोध कार्य उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले के मदरसों तक ही सीमित है।
- इस शोध में उद्देश्य की प्राप्ति के लिए केवल मदरसा गौसिया के कक्षा 6-(अ) के समस्त विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को ही न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध कार्य की विषय वस्तु को ध्यान में रखते हुए नृजातीय विधि का चयन किया गया हैं।

प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्शन

प्रस्तुत लघु-शोध में प्रतिदर्श चयन अथवा प्रतिदर्शन हेतु सोद्देश्य प्रतिदर्शन प्रविधि का उपयोग किया गया है एवं प्रतिदर्श के रूप में मदरसा गौसिया, वाराणसी के कक्षा-6(अ) के समस्त विद्यार्थियों एवं उनको पढ़ाने वाले शिक्षकों का चयन किया गया है।

उपकरण

प्रस्तुत लघु शोध कार्य हेतु शोधार्थी द्वारा समस्या से संबंधित कोई उपकरण उपलब्ध नहीं पाया गाया। उपकरण की अनुपलब्धता के कारण शोधार्थी द्वारा स्वयं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया अवलोकन अनुसूची का निर्माण किया गया है।

आंकड़ों का संग्रहण

प्रस्तुत अध्ययन में आकड़ों के संग्रहण हेतु शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया अवलोकन अनुसूची का निर्माण किया। सत्र 2017-18 मदरसा हनफिया गौसिया बजरडीहा, वाराणसी के कक्षा-6(अ) के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया। आंकड़ों के संग्रहण के लिए सहभागी अवलोकन प्रविधि का उपयोग किया गया।

सहभागी अवलोकन आंकड़ा संग्रहण करने की वह विधि है जिसमें शोधार्थी स्वयं समूह का सदस्य बन कर उनके व्यवहारों का प्रेक्षण करता है। इस तरह के प्रेक्षण में शोधार्थी का उद्देश्य व्यवहारों का ठीक ढंग से वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण करना होता है और इस

उद्देश्य से वह समूह का सक्रिय सदस्य बन व्यक्तियों के व्यवहार के हर पहलू के बारे में अपना विस्तृत रिकार्ड प्रेक्षण की जगह पर तैयार कर लेता है और बाद में उसका विश्लेषण कर एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है।

शोधार्थी ने एक शिक्षक के रूप में सहभागिता कर अनुसंधान प्रतिभागियों (शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं कक्षा) का अवलोकन किया एवं यथा संभव आंकड़ों का संकलन किया। कुछ दिनों के अवलोकन के बाद शोधार्थी ने मदरसे में 20 (कार्य-दिवस) दिन और बिताए ताकि वह मदरसे की संस्कृति से अच्छे से परिचित हो जाये और साथ ही शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य व्यक्तियों में उसकी उपस्थिति दर्ज हो जाए।

अवलोकन के पहले कुछ दिनों के दौरान शोधार्थी का यह प्रयास रहा कि प्रतिभागियों के सामने उनकी क्रियाओं के बारे में न लिखे, क्योंकि उसे लगा कि इससे प्रतिभागी उससे अच्छे से घुलमिल नहीं पाएंगे और एक विश्वास कायम नहीं हो पाएगा। फिर भी शोधार्थी कि यह कोशिश रही कि वह बीच-बीच में उनकी क्रियाओं के बारे में लिखती रहे। कभी-कभी किसी खाली कक्ष में बैठकर शोधार्थी ने वह सब लिखा जो उसने पूरे दिन के दौरान अवलोकन किया साथ ही शिक्षकों एवं विद्यार्थियों से बातचीत करने पर उनकी प्रतिक्रियाओं के बारे में भी लिखा।

वास्तविक अवलोकन के दौरान शोधार्थी ने अधिकांशतः कक्षा में पीछे बैठ कर अवलोकन किया साथ ही जो भी प्रेक्षण किया उसे साथ ही साथ लिखती गयी। अवलोकन के आखरी दिनों में शोधार्थी ने यथा संभव प्रतिभागियों की क्रियाओं को जानने की कोशिश की। शोधार्थी ने अपने शोध उद्देश्य (शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया) को ध्यान में रख कर कर अपना अवलोकन कार्य पूर्ण किया।

आंकड़ों का विश्लेषण तथा विवेचन

प्रतिभागी अवलोकन के द्वारा प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण सहभागी अवलोकन के लिए बनाये गए उपकरण के विभिन्न पक्षों के सापेक्ष निम्न प्रकार से किया गया।

विषय वस्तु का ज्ञान

उद्देश्य की पूर्ति हेतु मदरसे में शोधार्थी द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन किया गया और यह पाया गया कि शिक्षक का पाठ्य के निर्धारित उद्देश्य एवं विषय-वस्तु की प्रस्तुति में सटीक संबंध नहीं है। शिक्षक प्रारंभ में तो विषय पर केंद्रित होकर शिक्षण कार्य करते थे परंतु बीच-बीच में अपने उद्देश्य से भटक जाते थे एवं कक्षा में पढ़ाने के बजाए गैर पाठ्यक्रम

संबंधित बातों को प्रस्तुत कर रहे थे, और अवलोकन में यह भी पाया गया कि शिक्षक कक्षा सत्र के अंत में विषय–वस्तु का सार प्रस्तुत तो करते थे परंतु उसे केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित रख पाते थे। सार के रूप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षकों को विषय का ज्ञान तो है परंतु उनकी प्रस्तुति में निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप तार्किक क्रमबद्धता नहीं थी। अत: शिक्षकों को चाहिए कि वो पाठयोजना का निर्माण कर उनके अनुरूप शिक्षण कार्य करें।

शिक्षण रणनीतियाँ

शोधार्थी द्वारा मदरसे में प्रयुक्त की जा रही शिक्षण रणनीतियों का अवलोकन किया गया और यह पाया गया कि शिक्षक कक्षा में विभिन्न व्यक्तित्व वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षण कार्य नहीं करते थे। अवलोकन के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि शिक्षक केवल कुशाग्र बुद्धि वाले विद्यार्थियों पर ज्यादा ध्यान दे रहे थे तथा जो बच्चे पढ़ने में कमजोर थे उनको कुछ सीमा तक समझने की कोशिश तो करते थे परंतु सफल नहीं हो पा रहे थे। अवलोकन से यह भी पता चला कि अधिकांश शिक्षक ऐसे थे जो कक्षा में पहुँचने के बाद विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान से संबंधित प्रश्न करने के बाद पाठ का आरंभ करते थे तथा विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को वर्तमान ज्ञान से जोड़ पाते थे। जैसे विद्यार्थी को ग्लोब के बारे में बताने के लिए पहले गाँव, फिर खेत फिर खेत की जमीन को मानचित्र से जोड़ कर ग्लोब के बारे में बताना। कुछ शिक्षक ऐसे भी थे जो प्रस्तुत पाठ को वर्तमान ज्ञान से जोड़ने में सफल नहीं हो रहे थे। इससे यह स्पष्ट है कि शिक्षक, प्रशिक्षण के आभाव में पूर्व ज्ञान को वर्तमान ज्ञान से जोड़ पाने में असफल हैं। अत: शिक्षकों में शिक्षण कौशल के विकास के लिए सेवारत प्रशिक्षण का प्रयास करना होगा।

अधिगमकर्त्ता का ज्ञान

शोधार्थी द्वारा मदरसे में प्रतिभागी अवलोकन के उपरांत यह स्पष्ट हुआ कि शिक्षक को विद्यार्थियों की संस्कृति का ज्ञान था और शिक्षक विद्यार्थियों की संस्कृति के अनुरूप उससे प्रश्न कर रहे थे परंतु शोधार्थी ने यह भी पाया कि शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता का सही ज्ञान नहीं था। शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी से एक ही प्रकार के उत्तर की अपेक्षा कर रहे थे। इससे यह स्पष्ट हो रहा था की शिक्षक व्यक्तित्व विभिन्नता को शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान नहीं दे रहे थे। जबकि किसी भी अधिगम प्रक्रिया में यह महत्वपूर्ण होता है कि शिक्षक विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नता, रूचि, क्षमता आदि से परिचित हो तथा पूर्व ज्ञान का आकलन करे।

जब तक विद्यार्थियों की रूचि, क्षमता आदि की पहचान नहीं हो पाएगी तब तक शिक्षक प्रभावपूर्ण शिक्षण कार्य नहीं कर पायेगा। क्योंकि इन्हीं सब घटकों के फलस्वरूप ही प्रभावपूर्ण शिक्षण होता है।

शिक्षण-सहायक सामग्री

शोधार्थी द्वारा शोध के उद्देश्य की पूर्ति हेतु मदरसे में प्रतिभागी अवलोकन के द्वारा यह पाया कि शिक्षक कक्षा में शिक्षण सहायक सामग्री के साथ प्रस्तुत होते थे जैसे भूगोल की कक्षा में ग्लोब एवं मानचित्र का प्रयोग तथा विज्ञान की कक्षा में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति को समझाने के लिए डस्टर का प्रयोग करना। साथ ही साथ श्यामपट्ट का भी उपयोग करते थे। परंतु अवलोकन के द्वारा यह भी पाया गया कि शिक्षक सहायक-सामग्री का प्रयोग तो करते थे परंतु उसे प्रभावशीलता के साथ प्रस्तुत नहीं कर पाते थे। जैसे मानचित्र की स्थिति सही न होने के कारण पीछे बैठने वाले विद्यार्थी उसको देख नहीं पा रहे थे। किसी भी शिक्षण-सहायक सामग्री का यदि ठीक प्रकार से उपयोग नहीं किया जाएगा तो वह प्रभावी नहीं होगा। अत: शिक्षक को ऐसी सहायक सामग्री का प्रयोग करना होगा जिसे सभी विद्यार्थी देख सके, समझ सकें। जब तक सभी विद्यार्थी उसको नहीं समझेंगे वह विद्यार्थियों के ज्ञान को बढ़ाने में सहायक सिद्ध नहीं होगा। इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि इन शिक्षकों में शिक्षक प्रशिक्षण का अभाव था जिसके कारण ये शिक्षक-सहायक सामग्री का प्रभावपूर्ण उपयोग नहीं कर पा रहें थे।

कक्षा अन्त:क्रिया

शोधार्थी द्वारा शोध उद्देश्य की पूर्ति हेतु मदरसे की कक्षा-6(अ) में अवलोकनोपरांत यह पाया गया कि कक्षा में शिक्षक एवं विद्यार्थियों के बीच संतोषजनक अन्त:क्रिया हो रही थी। शिक्षण के दौरान या शिक्षण के अंत में विद्यार्थी द्वारा प्रश्न पूछने पर शिक्षक-प्रतिक्रिया दे रहे थे तथा शिक्षक द्वारा पहल करने पर विद्यार्थी भी प्रतिक्रिया जाहिर कर रहे थे। अवलोकन में यह भी पाया गया कि विद्यार्थियों के बीच आपस में संतोषजनक अन्त:क्रिया हो रही थी। किसी भी कक्षा कि सजीवता का परिचायक कक्षा की अन्त:क्रिया होती है, जोकि यहाँ अवलोकन करने पर संतोषजनक पाया गया। इससे यह पता चलता है कि शिक्षक तथा विद्यार्थी, दोनों के बीच काफी अच्छा संबंध था।

कक्षा की भौतिक स्थिति

शोधार्थी द्वारा मदरसे में अवलोकन के उपरांत यह पाया गया कि कक्षा की भौतिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी। कक्षा में बैठने की व्यवस्था सुव्यवस्थित नहीं थी। विद्यार्थियों की

संख्या के अनुपात में मेज-कुर्सी कम थे जिससे विद्यार्थी न तो सही से बैठ पा रहे थे और न ही लिख पा रहे थे। कक्षा की खिड़की बाहर गली में खुलने के कारण शोरगुल की स्थिति बनी रहती थी जिससे विद्यार्थी कक्षा में एकाग्रता नहीं बना पा रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कक्षा में कई सालों से रंगाई-पुताई का काम नहीं हुआ था। अवलोकन के द्वारा यह भी पाया गया कि कक्षा का आकार छोटा होने की वजह से शिक्षण सहायक सामग्री रखने की भी व्यवस्था नहीं थी। प्राकृतिक प्रकाश की समुचित व्यवस्था नहीं थी। परंतु एक अच्छी चीज देखने को मिली कि बिजली जाने पर इंवर्टर की व्यवस्था थी। कक्षा के कमरे छोटे होने के बावजूद दो पंखे और दो ट्यूब लाइट से सुसज्जित थे। इससे यह पता चलता है कि मदरसा आधारभूत संरचनाओं की कमी से जूझ रहा था। अतः मदरसे के प्रबंधक को चाहिए कि सरकार द्वारा अल्पसंख्यक संस्थानों के लिए चलायी जा रही योजना का लाभ ले।

संप्रेषण कौशल

शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोध के उद्देश्य की पूर्ति हेतु मदरसे में अवलोकन किया गया और यह पाया गया कि कक्षा में शिक्षक एवं विद्यार्थी के बीच प्रभावशील संप्रेषण का अभाव है क्योंकि शिक्षक विद्यार्थियों को उनके नामों से नहीं पुकार रहे थे तथा बिना किसी शारीरिक हाव-भाव के शिक्षण कार्य कर रहे थे। परंतु कुछ शिक्षक ऐसे भी थे जो विद्यार्थियों से प्रभावपूर्ण संप्रेषण कर रहे थे तथा विद्यार्थी पाठ समझ न आने पर बिना डर के स्वतंत्र रूप से अपनी प्रतिक्रिया दे रहे थे। यहाँ यह बात तो स्पष्ट होती है कि विद्यार्थियों में शिक्षक के प्रति किसी प्रकार के डर का भाव नहीं था वो बिना हिककिचाहट प्रश्न पूछ रहे थे। परंतु शिक्षकों द्वारा सम्प्रेषण कौशल व विद्यार्थियों से प्रश्न पूछे जाने के तरीके से यह स्पष्ट होता है कि अध्यापक प्रशिक्षित नहीं हैं अन्यथा वे सम्प्रेषण कौशल व अन्य शिक्षण क्रियाओं के महत्व को समझ सकते और शिक्षण कार्य को प्रभावशाली बना सकते।

मूल्यांकन क्रिया

शोधार्थी द्वारा मदरसे में प्रतिभागी अवलोकन के उपरांत यह पाया गया कि शिक्षक अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कक्षा में शिक्षण के दौरान तात्कालिक प्रतिपुष्टि के लिए विद्यार्थियों से प्रश्न पूछ कर अपने उद्देश्य की पुष्टि कर रहे थे परंतु अधिकांश प्रश्न सूचनात्मक स्तर के थे जिससे शिक्षण के अंत में यह सुनिश्चित नहीं हो पा रहा था कि

विद्यार्थियों की अंत:दृष्टि विकसित हुई अथवा नहीं एवं उसका उपयोग अपने दैनिक जीवन में में कर सकते हैं अथवा नहीं।

अध्ययन के मुख्य परिणाम

आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर मुख्य परिणाम निम्नलिखित हैं :

- मदरसे की शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया हेतु सहभागी अवलोकन के उपरांत पाया गया कि मदरसे के शिक्षकों को विषय वस्तु का ज्ञान था परंतु आधुनिक विषयों के प्रति उदासीनता थी।
- शिक्षक बिना पाठ योजना/इकाई योजना के शिक्षण कार्य करते थे।
- शिक्षक अपनी कक्षाएं नियमित रूप से संचालित करते थे।
- अधिकांश शिक्षकों के शिक्षण उद्देश्य एवं विषय वस्तु की प्रस्तुति में संतोषजनक संबंध था।
- अधिकांश शिक्षकों को अधिगमकर्त्ता के ज्ञान के स्तर के बारें में पूर्ण ज्ञान था केवल कुछ शिक्षक ही ऐसे थे जिन्हें विद्यार्थीयों के ज्ञान के स्तर का पूर्ण ज्ञान नहीं था।
- शिक्षक शिक्षण–सहायक सामग्री का प्रयोग कर रहे थे केवल कुछ शिक्षक ही ऐसे थे जो शिक्षण–सहायक सामग्री को प्रभावशीलता के साथ प्रस्तुत कर पाते थे।
- शिक्षक विद्यार्थी को पाठ में संलग्न रख पाते थे।
- शिक्षक एवं विद्यार्थी के बीच संतोषजनक अन्त: क्रिया हो रही थी। शिक्षक विद्यार्थी के प्रति स्नेह रखते थे।
- अधिकांश शिक्षक विषय से संबंधित उचित उदाहरण प्रस्तुत कर पा रहे थे।
- शिक्षक व्यक्तिगत विभिन्नता को शिक्षण कार्य में महत्व नहीं देते थे।
- कक्षा की भौतिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी।
- अधिकांश विद्यार्थियों में स्वयं की अवधारणा बोध करने की क्षमता नहीं थी।
- विद्यार्थी एवं शिक्षक एक दूसरे का सम्मान करते थे।
- विद्यार्थी कक्षा में स्वतंत्र रूप से अपनी प्रतिक्रिया दे रहे थे।

- नवाचार के प्रति शिक्षक एवं विद्यार्थी की अभिवृत्ति उच्च एवं मध्यम स्तर की पाई गई थी।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में मदरसा शिक्षा व्यवस्था में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अध्ययन किया गया जिससे निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता हैं कि मदरसे में अधिकांश शिक्षक प्रभावशाली शिक्षण प्रक्रिया अपनाते हैं और साथ ही शिक्षक शिक्षण-सहायक सामग्री का प्रयोग करते हैं हालांकि उनकी प्रभावशीलता में कुछ कमी है जो कि प्रशिक्षण के अभाव के कारण है। अधिकांश शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान था परंतु आधुनिक विषयों में कम ज्ञान था।। शिक्षक नियमित रूप से कक्षाएँ संचालित करते हैं एवं शिक्षक एवं विद्यार्थी के बीच उत्तम अन्तः क्रिया हो रही है। शिक्षक व्यक्तिगत विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए शिक्षण करने में सफल नहीं हो पा रहे, केवल आगे बैठने वाले विद्यार्थियों से ही प्रश्न करते हैं तथा पढ़ाई में कमजोर विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान में आंशिक सफलता प्राप्त करते हैं। कक्षा में शिक्षक एवं विद्यार्थी के बीच सकारात्मक अन्तः क्रिया हो रही थी जो कि कक्षा की सजीवता का उदाहरण है। शिक्षक द्वारा शिक्षण के दौरान तात्कालिक प्रतिपुष्टि के लिए पूछे गए प्रश्न का स्तर सूचनात्मक था जिससे यह पता नहीं चल पा रहा था की विद्यार्थियों की अंतः दृष्टि विकसित हो रही है अथवा नहीं।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत शोध निम्नलिखित वर्गों के लिए निम्नानुसार सहायक सिद्ध हो सकता है:

शोधकर्त्ता के लिए

प्रस्तुत शोध कार्य ऐसे शोधार्थियों के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है जो मदरसे के क्षेत्र जैसे उसकी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, पाठ्यक्रम, कक्षा-अंतः क्रिया आदि में शोध कार्य के लिए इच्छुक हैं। उनके लिए यह मार्गदर्शक के रूप में सहायक होगा एवं साथ ही उन्हें अपने शोध कार्य को पूर्ण करने में भी सहायता मिलेगी।

शैक्षिक योजनाकारों के लिए

प्रस्तुत शोध शैक्षिक योजनाकारों के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। वे मदरसे में शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए तथा उसे मुख्यधारा से जोड़ने के लिए तथा शिक्षकों के लिए

समय-समय पर सेवारत शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करें जिससे शिक्षकों में कक्षा-शिक्षा एवं कक्षा-नियंत्रण आदि कौशलों के साथ ही नवाचारी शिक्षण प्रविधियों का संवर्धन हो।

पाठ्यक्रम निर्माणकर्ताओं के लिए

प्रस्तुत शोध पाठ्यक्रम निर्माणकर्ताओं के लिए इस लिहाज से सहायक सिद्ध हो सकता है कि वे मदरसों के लिए सरकार द्वारा चलायी जा रही योजना (मदरसों में गुणवत्ता शिक्षा संवर्धन योजना) के तहत एक एकीकृत पाठ्यक्रम का निर्माण करें जिससे वहाँ के विद्यार्थी इस्लामिक शिक्षा के साथ ही साथ आधुनिक शिक्षा (विज्ञान, गणित, एवं सामाजिक अध्ययन) को भी ग्रहण कर सकें ताकि इन संस्थानों में पढ़ने वाले बच्चों को अकादमिक दक्षता हासिल हो सके एवं देश के विकास में योगदान दे सकें।

प्रबंधकों के लिए

प्रस्तुत शोध मदरसे के प्रबंधकों के लिए सहायक सिद्ध होगा। प्रस्तुत शोध कार्य से पता चलता है कि मदरसे में आधारभूत संरचनाओं की कमी, शिक्षकों की कमी एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की गुणवत्ता की कमी है। अतः प्रबन्धकों को चाहिए कि वे शिक्षकों के चयन करते समय प्रशिक्षित शिक्षकों को वरीयता दें एवं क्षेत्र भ्रमण जैसी गतिविधियों की भी व्यवस्था करें तथा केंद्र सरकार द्वारा आयोजित अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों की आधारभूत संरचना के विकास के लिए बनाई गयी योजना का लाभ उठाएँ।

संदर्भ

अली, एमडी. एम. एवं किशोर, के. (2014). सेक्युलर एटीटयूडः अ स्टडी ऑफ मदरसा स्टूडेंट्स, इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, 4(11), 167-169.

अली, एम. डी. एम. (2015). एन ओवरव्यू ऑन मदरसा एजुकेशन इन इंडिया, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ डेवलपमेंट रिसर्च, 5(3), 3714-3716.

अलवी, एस. एम. जेड. (1998). मुस्लिम एजुकेशन थॉट इन दा मिडिल एज, नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स पृष्ठ संख्या-2.

अहमद, एम. ए. सी. (1985). ट्रेडिशनल एजुकेशन अमंग मुस्लिम्स, दिल्लीः बी.आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशनः पृष्ठ संख्या 2-3.

अहमद, के. आ. (2014). मदरसा एजुकेशन इन असम एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन दा सोसाइटी-अ क्रिटिकल स्टडी, पी-एच.डी. थीसिस. (अप्रकाशित), कला विभाग, गुवाहाटी विश्विद्यालय.

अल-जीरा, जेड. (2011). होलनेस एंड होलीनेस इन एजुकेशनरू अन इस्लामिक प्रस्पेक्टिव, हेर्नडो, वी

अरू इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक थॉट.

अलजुनैद, एस.एम.के. एवं हुसैन, डी.आई. (2005). एस्ट्रेनज फ्रॉम दा आइडियल पास्ट: हिस्टोरिकल एजुकेशन ऑफ मदरसा इन सिंगापुर, जर्नल ऑफ मुस्लिम माइनॉरिटी अफेयर्स, 25(2), 250-260.

असमा, एस. एवं शाजिल, टी. (2015). रोल ऑफ मदरसा एजुकेशन इन एम्पावरमेंट ऑफ मुस्लिम्स इन इंडिया, जर्नल ऑफ हुमानिटीस एंड सोशल साइंस, 20(2), 10-15.

इश्तियाक, एम. एवं अबुहुरेरा. (2014). रोल ऑफ मदरसा इन प्रोमोटिंग एजुकेशन एंड सोशिओ इकोनोमिक डेवेलपमेंट इन मेवात डिस्ट्रिक, स्टेट ऑफ हरियाणा, प्रोसडिया सोशल एंड बिहेवियर साइंस, 120, 84-89.

कुमार, आर. एवं रावत, एस. के. (2015). अ स्टडी ऑन दी एटीटयूड ऑफ मुस्लिम कम्युनिटी टुवर्ड्स मूर्डनाइजेशन ऑफ मदरसा एजुकेशन इन दा स्टेट ऑफ बिहार, जर्नल आफ इंटरनेशनल अकादमिक रिसर्च फॉर मल्टीडिसीप्लिनरी, 2(12), 248-255.

खान, एम.डब्लू. (2002). दीन व शरियत: दीन-ए-इस्लाम का एक फिकरी मुताल्ला: नई दिल्ली: दा इस्लामिक सेंटर.

गिब, एच.ए.आर., क्रमर, जे.एच.एल. एवं ब्रिल, इ.जे. (1974). शोर्टर एन्सैक्लोपिडिया ऑफ इस्लाम, लिडेन, नीदरलैंड, 300-309.

गोडबोले, एम. (2001). मदरसा: नीड फॉर फ्रेश लुक, इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 36(41), 3889-3890).

चौधरी, ए.क्यू.एस.ए. (2008). डेवलपमेंट ऑफ मदरसा एजुकेशन इन असाम सिंस इंडिपेंडेंस विद स्पेशल रेफरेंस टू बराक वैली रीजन, पी.एच.डी. थीसिस, (अप्रकाशित), शिक्षा विभाग. अलीगढ विश्विद्यालय.

जफर, ए. (2011). ए प्रोग्रेसिव मदरसा इन द हर्ट ऑफ उत्तर प्रदेश, इंडिया टूड़े, नई दिल्ली, 30 नवंबर.

जयरथ, एस. (2011). दिल्ली में लड़कियों के स्वतंत्र मदरसों का जेंडर परिपेक्ष्य के अंतर्गत एक शोध अध्ययन, परिपेक्ष्य, 31(3), 54-64.

झिंगरन, एस. (2005). मदरसा मॉडर्नाइजेशन प्रोग्राम, इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 5540-5542.

नारायण, के. आर. (2013). स्कीम फॉर प्रोवाइडिंग क्वालिटी एजुकेशन इन मदरसा इवैल्यूएशन स्टडी रिपोर्ट, सेंटर फॉर दलित एंड माइनरटीज स्टडीज, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली.

नाजनीन, एस. (2014). ज्ञान और मूल्य-मदरसा शिक्षा के संदर्भ में, परिपेक्ष्य, 34(4), 38-50.

पान, ए. (2014). अ स्टडी ऑफ प्रोफेशनल कमपेटेनसी इन रिलेशन टू सेल्फ ऐफीकेसी ऑफ मदरसा टीचर्स इन वेस्ट बंगाल, इंटरनेशनल जर्नल फॉर रिसर्च इन एजुकेशन, 3(4), 26-31.

प्रेस इन्फोर्मेशन ब्यूरो गवर्नमेंट ऑफ इंडिया. (2014). स्कीम फॉर मदरसा मॉडर्नाइजेशन

बानो, एम. (2008). आलग्विंग फार डाईवरसिटीरू स्टेट–मदरसा रिलेशन इन बंगलादेश, वर्किंग पेपर, 13, यूनिवर्सिटी ऑफ बरहिंगम.

मियासाहिब, एम. (1991). अल–हदीसः एन इंग्लिश ट्रांसलेशन एंड कमेन्ट्री, नई दिल्लीः इस्लामिक बुक सर्विस.

वानी, एच. ए. (2012). मदरसा एजुकेशन इन इंडियाः ए नीड़ फॉर रेफोर्मेशन, रिसर्च गेट, 2(2), 235–250.

सिकंद, वाई. (2004). रेफोर्मिंग दी इंडियन मदरसारू कंटेम्परोरी मुस्लिम वौइस, एशिया पसिफिक सेंटर फॉर सिक्यूरिटी स्टडीज, 117–143.

सोनी, डी. (2010). मुस्लिम एजुकेशन अ स्टडी ऑफ मदरसा, सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी, 11–32.

हक, ए.एच.एम. (2013). कॉन्ट्रिब्यूशन ऑफ मदरसा इन हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव, जर्नल ऑफ हुमानिटीस एंड सोशल साइंस, 1(4), 11–13.

हुसैन, एस.एम.ए. (2005). मदरसा एजुकेशन इन इंडियाः एलेवेनथ टू ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी. नई दिल्लीः कनिष्का पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स पृष्ठ संख्या–19.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त 2017

शोध टिप्पणी/संवाद

आर्य समाज व गायत्री परिवार के शैक्षिक विचारों की वर्तमान शिक्षा में प्रासंगिकता

रमेश प्रसाद पाठक* एवं **अमिता पाण्डेय भारद्वाज****

भूमिका

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा तथा अवसरों में समानता के संदर्भ में एक सदी पूर्व अपना विचार सक्रिय रूप से प्रस्तुत किया था। स्वामी जी का यह शैक्षिक विचार आज भी प्रासंगिक है। आज की नयी शिक्षा नीति की परिकल्पना में यद्यपि नवोदय विद्यालयों को ग्रामीण अंचल में खोलने का प्रयास जारी है किन्तु ऐसे विद्यालय स्वामी जी की विद्यालय व्यवस्था का सामान्यीकरण करने में विफल हैं। भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षा की आत्मा स्वतंत्रता तथा समानता के लिए बेकरार है। स्वामी जी का यह मत है कि यदि शिक्षा के विभिन्न पहलू समानता से युक्त हों तो ऐसी अवस्था में जातिवाद, क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद का समाधान अपने आप हो जायेगा। स्वामी जी पृथ्वी पर एक पूर्ण तथा सम्पन्न जीवन देखना चाहते थे। इस निमित्त वे शिक्षा तथा सम्पत्ति का न्यायोचित वितरण समाज के लिए आवश्यक मानते थे।

शिक्षा सबके लिए

वर्तमान समय में भारत सरकार 14 वर्ष तक की शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए प्रयत्नशील है। इसे स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक विचारों का प्रतिफल माना जा सकता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारत के पहले शिक्षाशास्त्री हैं जिन्होंने सभी वर्गों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करने की घोषणा की। स्वामी जी से पूर्व

* विभागाध्यक्ष एवं संकाय प्रमुख, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली–110016
** सह–आचार्य, शिक्षा संकाय, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली–110016

शिक्षा सबके लिए सुलभ नहीं थी क्योंकि उस समय स्त्रियों तथा शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं दिया गया था। स्वामी जी ने इस व्यवस्था का जोरदार ढंग से विरोध किया और शिक्षा की सार्वभौमिकता को स्वीकार करते हुए मानव मात्र के लिए शिक्षा को अभीष्ट बतलाया।

अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा

स्वामी दयानन्द सरस्वती अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। भारत के संविधान में अनुच्छेद के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है कि संविधान लागू होने के 10 वर्षों के भीतर 14 वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जायेगी किन्तु आज तक यह लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सका है। स्वामी जी ने आज से लगभग डेढ़ शताब्दी पूर्व शिक्षा की व्यवस्था में निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की उपादेयता पर विशेष जोर दिया था। स्वामी जी समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए एक समान शिक्षा के प्रबल समर्थक थे।

स्वामी दयानन्द केवल प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता को ही नहीं चाहते थे अपितु उन्होंने 24 वर्ष की अवस्था के सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य की शिक्षा के तथ्य को स्वीकार किया था।

शिक्षा का माध्यम

यद्यपि स्वामी दयानन्द सरस्वती की मातृभाषा हिन्दी नहीं थी लेकिन वे हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते थे। वर्तमान समय में हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। आधुनिक युग में अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की बाढ़-सी आ गयी है जिससे कभी-कभी विवादास्पद स्थिति उत्पन्न है। आज तक इस समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सका है। स्वामी जी की यह देन भारत के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

शिक्षा राज्य का उत्तरदायित्व

स्वामी दयानन्द सरस्वती शिक्षा व्यवस्था के लिए राज्य को उत्तरदायी मानते थे। उनके अनुसार राज्य का कर्त्तव्य शिक्षा की व्यवस्था का इस प्रकार अनुरक्षण तथा नियमन करना था कि कोई भी बालक या बालिका विद्यालय जाने से वंचित न रह जाये। उन्होंने आगे लिखा है, ''*इसमें राज नियम और जाति नियम होना चाहिए कि पांचवें तथा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रख सके, पाठशाला अवश्य भेजे और जो ऐसा न करे वह दण्डित हो।*'' स्वामी जी शिक्षा को अनिवार्य बनाना चाहते

थे। साथ ही वे यह भी चाहते थे कि एक निश्चित आयु तक लड़के-लड़कियों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और समावर्तन के पश्चात् ही उनका विवाह होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा के सर्वप्रथम प्रणेता

स्वामी जी ने जिस शिक्षा व्यवस्था का प्रतिपादन किया वह पूर्णरूप से राष्ट्रीय थी। उनके अनुसार शिक्षा व्यवस्था तथा शैक्षिक योजनाओं का कार्यान्वयन भारतीयों द्वारा होगा। शिक्षण संस्थाओं के प्रबन्धक भारतीय होंगे तथा अध्यापक भी भारतीय होंगे। स्वामी जी ने प्राचीन वैदिक शिक्षा के अनुरूप शैक्षिक विचारों की परिकल्पना की जिससे राष्ट्रीय भावना का विकास अवश्यम्भावी था। आर्य समाज की राष्ट्रीयता ने भारतीय शिक्षा का बहुत भला किया जैसे अंग्रेजी शिक्षा तथा भाषा के दुष्प्रभाव की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना तथा वैदिक प्राचीन शिक्षा को पुनर्स्थापित करना, संस्कृत शिक्षा की रुचि उत्पन्न करना, हिन्दी को शिक्षा के उच्च स्तर तक शिक्षा का माध्यम बनाना, आधुनिक परिवेश में गुरुकुल प्रणाली को पुनर्जीवित करना, वैदिक साहित्य में अनुसंधान, बिना किसी जाति, लिंग तथा संप्रदाय के भेदभाव के सबको शिक्षा प्रदान करने का अवसर प्रदान करना, प्राविधिक तथा व्यावसायिक शिक्षा का प्रारंभ करना।

स्वामी जी की राष्ट्रीय शिक्षा की देन आज की भारतीय परिस्थिति में अवश्य ही उपादेय है। राष्ट्र के समक्ष जितनी भी विकृतियों से पूर्ण समस्याएँ हैं, वे सभी राष्ट्रीयता के अभाव के कारण हैं। यदि शिक्षा के माध्यम से भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का स्थायी विकास किया जाए तो देश अपने गौरवशाली अतीत को पुनः प्राप्त कर लेगा।

शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन

आधुनिक युग के शिक्षाशास्त्री, समाजशास्त्री तथा मनोवैज्ञानिक निर्विवाद रूप से यह स्वीकार करते हैं कि सामाजिक परिवर्तन मात्र शिक्षा द्वारा सम्भव है। इस तथ्य को स्वामी जी ने डेढ़ शताब्दी पूर्व ही स्पष्ट कर दिया था। आर्य समाज के अनेक सामाजिक सुधारों को सम्पन्न किया जिनका शिक्षा पर सुदूर गहरा प्रभाव पड़ता है। स्वामी जी के अछूतोद्धार आन्दोलन से न केवल उस वर्ग को सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की अपितु उनके लिए बन्द शिक्षालयों के दरवाजों को हमेशा के लिए खोल दिया। विदेशों में जाकर शिक्षा ग्रहण करने पर सामाजिक प्रतिबन्ध था जिसके कारण शिक्षा के क्षेत्र में परस्पर विनिमय समाप्त हो चुका था। ऐसी सामाजिक हीन दशा में स्वामी

जी ने शुद्धि आन्दोलन चलाया जिसके द्वारा धर्मान्तरण कर चुके हिन्दुओं को फिर से आर्य समाज में लाया गया। वर्तमान समय में शिक्षा अनेक प्रकार की विकृतियों से ग्रसित हो चुकी है जिसमें ब्रह्मचर्य का पालन न करना, राष्ट्रीयता का अभाव, नैतिकता की कमी आदि प्रमुख हैं। स्वामी दयानन्द के शैक्षिक विचारों को अपनाकर वर्तमान शिक्षा की इन कमियों को दूर दिया जा सकता है।

आधुनिक तथा प्राचीन शिक्षा के मध्य समन्वय

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने उस समय की प्रचलित पाश्चात्य शिक्षा की अच्छाइयों को नकारा नहीं अपितु अच्छाइयों का समन्वयन अपने शैक्षिक विचारों में किया। प्राचीन पद्धति पर आधारित गुरुकुलों को पुनर्जीवित करना तथा भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी जी का अपूर्व योगदान है। गुरुकुलों की मुख्य विशेषता है- जनपद को कोलाहल से दूर प्रकृति की मनोरम, शान्त तथा प्राकृतिक परिवेश में गुरुकुलों की स्थिति, उपनयन संस्कार के साथ विद्यार्थियों का प्रवेश, बालक, बालिकाओं के लिए अलग-अलग गुरुकुलों का विकास, विद्यार्थियों तथा आचार्यों में पिता-पुत्र सदृश संबंध, उत्तम चारित्रिक विकास पर बल, बालक के बौद्धिक, आध्यात्मिक, नैतिक संवेगात्मक तथा शारीरिक विकास के लिए यथोचित सम्यक् वातावरण की उपस्थिति, विद्यार्थियों को प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्याओं का पूर्ण ज्ञान। स्वामी जी के विचारों पर आधारित गुरुकुलों में आधुनिकतम शिक्षा की प्रवृतियों तथा ज्ञान-विज्ञान का सुन्दर समन्वय है। उनकी शिक्षा योजना में अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य, पाश्चात्य विद्वानों के अध्ययन के साथ-साथ आधुनिक भारतीय भाषाओं के माध्यम से, संस्कृत वैदिक साहित्य, धार्मिक शिक्षा तथा अन्य निर्धारित पाठ्यक्रमों के अध्ययन का प्रावधान है। संध्या तथा हवन का अभ्यास, सांस्कृतिक कार्यक्रम, शारीरिक शिक्षा एवं योगाभ्यास, सदाचार की शिक्षा, अनिवार्य गुरुकुल सहवास तथा कठोर ब्रह्मचर्य का पालन उनकी शिक्षा योजना का अंग है।

यदि स्वामी जी के विचारों पर आधारित शिक्षण संस्थाओं का संचालन आधुनिक परिवेश की आवश्यकतानुरूप किया जाय तो ऐसी शिक्षण पद्धति भारत के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। अतः भारत की लोकतांत्रिक शिक्षा उसकी निजी सांस्कृतिक तथा सभ्यता के अतीत के धरोहर को अपनाते हुए आधुनिक शिक्षा की प्रवृत्तियों का समावेश कर सके तो इससे शिक्षा का वास्तविक स्वरूप निखरेगा।

धार्मिक, सामाजिक तथा ज्ञानात्मक शिक्षा

स्वामी दयानन्द सरस्वती की शिक्षा धार्मिक, सामाजिक तथा ज्ञानात्मक है। उन्होंने शिक्षा को ऐसी प्रक्रिया माना जिसके द्वारा शिक्षा प्राप्त करने वाला अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर तथा अज्ञान से ज्ञान की ओर प्रवृत्त होता है। ज्ञान का प्रकाश वेदों का प्रकाश है। वेद ही सत्य ज्ञान-विज्ञान के साधन हैं। स्वामी जी ने वैदिक शिक्षा का समायोजन आधुनिक विज्ञानों तथा प्रौद्योगिकी पर आधारित शिक्षा के साथ बड़ी पटुता से किया है। शिक्षा की ऐसी प्रवृत्ति का आज की भारतीय शिक्षा में समावेश वर्तमान समय की मांग है।

शिक्षा का उद्देश्य

स्वामी दयानन्द ज्ञान, कर्म, उपासना तथा विज्ञान के चतुष्कोण से पूर्ण व्यक्तित्व विकास की कल्पना शिक्षा द्वारा करते हैं। वे इस भौतिक जगत के साथ-साथ पारलौकिक आध्यात्मिक जगत की सिद्धि के लिए पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं। समन्वयपूर्ण सामाजिक तथा वैयक्तिक विकास, आध्यात्मिक तथा धार्मिक विकास, शारीरिक विकास, चारित्रिक विकास, सद्गुणों का विकास, ज्ञानात्मक विकास, नैतिकता का विकास, जीविकोपार्जन की प्राप्ति आदि स्वामी जी के शैक्षिक उद्देश्य थे। स्वामी जी औपचारिक शिक्षा के पक्षधर नहीं थे, अपितु वे प्राप्त ज्ञान तथा विज्ञान के व्यावहारिक क्रियान्वयन में विश्वास रखते थे। स्वामी जी द्वारा निरुपित शिक्षा के उद्देश्य सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक हैं। स्वामी जी के शैक्षिक उद्देश्य आज भी उतने ही प्रासंगिक, सार्थक अर्थपूर्ण तथा उपयोगी हैं जितने वे प्रतिपादन के समय थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आज से लगभग डेढ़ दशक पूर्व जिन शैक्षिक विचारों का प्रतिपादन किया वे आधुनिक शैक्षिक परिवेश में बड़ी सीमा तक उपयोगी तथा हितकारी हैं। आधुनिक शिक्षा में स्वामी जी के शैक्षिक विचारों का समावेश कर उसे विकृत होने से बचाया जा सकता है। शिक्षा की अनिवार्यता, शिक्षा के अवसरों में समानता, समतुल्य आसन, समतुल्य परिधान, समतुल्य आवास, समतुल्य खान-पान तथा शिक्षण सामग्रियों की नि:शुल्क आपूर्ति, शिक्षा को राज्य का संरक्षण, शिक्षा राज्य का दायित्व होना तथा शिक्षा की स्वायत्तता आदि से युक्त स्वामी जी की शिक्षा योजना आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए दिशा-निर्देश के रूप में हैं। प्रवेश की समस्या, परीक्षा की समस्या, अनुशासनहीनता की समस्या, छात्र असंतोष, अध्यापक असंतोष, अभिभावक

असन्तोष, बेरोजगारी की समस्या शिक्षा की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक समस्या दोषपूर्ण शिक्षा, प्रशासनिक अवरोध, शिक्षा के स्तर में गिरावट, पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता, अपव्यय की समस्या, विभिन्न स्तर के विद्यालयों का होना, शिक्षा की उद्देश्यविहीनता, निर्देशन तथा परामर्श की समस्या, शिक्षण माध्यम की समस्या, आदि वर्तमान भारतीय शिक्षा की विकृतियाँ तथा असंगतियां हैं जिनका अनुभव करते हुए निराकरण के लिए प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

गायत्री परिवार के शैक्षिक विचारों की वर्तमान शिक्षा में प्रासंगिकता

शान्तिकुंज गायत्री परिवार के संस्थापक आचार्य पंडित श्रीराम शर्मा के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता को सिद्ध करने के लिए उनके शैक्षिक विचारों को बिन्दुवार संक्षेप में प्रस्तुत करना समीचीन जान पड़ता है। आचार्य जी के शैक्षिक विचारों में विभिन्न प्रकार के मानवीय मूल्यों के सम्वर्द्धन पर विशेष बल दिया गया है। आचार्य जी के शैक्षिक विचारों के प्रमुख उद्देश्यों को निम्नलिखित संदर्भ में प्रतिपादित किया जा सकता है।

नैतिक मूल्य

आचार्य जी की संकल्पना का मूर्त रूप देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैतिक मूल्यों के सम्वर्द्धन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। यहाँ के वातावरण में जहां स्वतंत्रता है वहीं उच्च चारित्रिक विकास पर बल दिया जाता है। यहाँ सामाजिकता का अद्भुत संगम देखने को मिलता है और पांचों सार्वजनिक मूल्यों (प्रेम, सदाचार, सत्य, शान्ति और अहिंसा) का विकास सतत् हो रहा है। यहाँ पर ईमानदारी, दया, सहयोग, उत्तरदायित्व का ज्ञान, अपना आदर, अपना सहयोग, स्वार्थहीनता एवं सेवाभाव जैसे गुणों को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है जिसकी वर्तमान समय में बहुत आवश्यकता है। वर्तमान समय में जिस तेजी से नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है तथा भौतिकतावाद बढ़ रहा है उसे देखते हुए नैतिक मूल्यों के विकास सम्बन्धी आचार्य जी के विचार अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

सामाजिक मूल्य

गायत्री परिवार द्वारा स्थापित सभी संस्थाएं आपस में मिलकर सामाजिक मूल्यों को देश भर में विकसित करने का प्रयास कर रही हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय और शान्तिकुंज दोनों परिसर में यज्ञशाला से भोजनालय तक कहीं भी जाति-भेद, वर्ग भेद

दिखायी नहीं देता। अवर्ण-सवर्ण, नर-नारी सभी अपनी योग्यतानुसार अपने कार्य को पूर्ण मनोयोग के साथ सम्पन्न करते हैं। यहाँ के छात्र देश के विभिन्न भागों में जाकर वहाँ की सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करते हैं और समाज में व्याप्त बुराईयों पर प्रकाश डालकर उन्हें दूर करने का प्रयास करते हैं। जब गायत्री परिवार के अन्तर्गत कार्यरत संस्थाएं सामाजिक मूल्यों को विकसित करने का इस प्रकार प्रयास कर रही हैं तो देश के अन्य विश्वविद्यालयों को भी सामाजिक मूल्यों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए जिससे व्यक्ति के अन्दर सामाजिक मूल्यों का विकास होने के साथ ही एक नये समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो सके।

आध्यात्मिक मूल्य

गायत्री परिवार आध्यात्मिक मूल्य के विकास में निरन्तर प्रयत्नशील है। आध्यात्मिकता को वैज्ञानिक स्वरूप देने का कार्य शान्तिकुंज और देव संस्कृति विश्वविद्यालय में होता है। यह कार्य ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में संचालित होता है। यहाँ मंत्र शक्ति, ध्यान, प्राणायाम, यज्ञ आदि सभी विधाओं को विज्ञान की कसौटी पर कसा जाता है। विश्व भर के लोग इसे देखने आते हैं। और इससे प्रभावित हुए बिन नहीं रह पाते हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं शान्तिकुंज परिसर में शुद्धता, संयम, संतोष, आत्मानुशासन, धैर्य, सहनशीलता एवं धर्म परायणता देखने को मिलती है। इन्द्रियों पर नियंत्रण एवं आत्मा की शुद्धि के लिए यहाँ पर जाप एवं ध्यान को महत्व दिया जाता है। यहाँ के आध्यात्मिक मूल्यों के विकास के चलते परिसर में रहने वाले छात्रों के साथ-साथ बाहर से आये आगन्तुकों को भी आध्यात्मिक सुख मिलता है जो उनके मन में स्थायी शान्ति प्रदान कर प्रेम की धारा प्रवाहित करती है। वर्तमान परिवर्तित परिवेश में भौतिकतावाद जिस प्रकार से सुदृढ़ हो रहा है उससे आध्यात्मिक मूल्यों के विकास की आवश्यकता बहुत अधिक बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में गायत्री परिवार के आध्यात्मिक मूल्य समाज की बहुत सी विकृतियों को दूर कर एक स्वस्थ समाज के निर्माण में सहायक हो सकते हैं।

बौद्धिक मूल्य

वर्तमान समय में लगभग सभी शैक्षिक संस्थाएं बौद्धिक विकास के कार्य में लगी हुई हैं, किन्तु बौद्धिक मूल्य इससे हट कर है। बौद्धिक मूल्य का तात्पर्य केवल बुद्धि के विकास मात्र से नहीं है अपितु ज्ञान का महत्व और सत्य प्राप्ति की इच्छा से है। इसका वास्तविक अर्थ आध्यात्मिक बुद्धि से है। बुद्धि के विकास होने से समाज को लाभ और

हानि दोनों हो सकता है, किन्तु आध्यात्मिक बुद्धि के विकास से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण हो सकता है। बौद्धिक मूल्य का प्रयोग सामाजिक कार्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है या किसी समूह के लिए किया जाता है। वर्तमान शिक्षा में केवल किताबी शिक्षा या तकनीकी शिक्षा तक सीमित हो चुकी है जिसका भौतिकवाद से सीधा संबंध है। अतः ऐसे परिवेश में आध्यात्मिक बौद्धिक विकास समाज को एक नयी दिशा देने में सहायक होगा।

वैज्ञानिक मूल्य

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। यह सर्वविदित तथ्य है कि बिना विज्ञान के विकास अधूरा है। मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में विज्ञान अहम भूमिका अदा कर रहा है। विज्ञान व्यक्ति के विकास के साथ राष्ट्र एवं विश्व कल्याण का कार्य कर रहा है। यह मानव जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है जिसके कारण इसका मानवीय मूल्य महत्वपूर्ण है। गायत्री परिवार द्वारा स्थापित संस्थाएं आधुनिक युग के वैज्ञानिक मांग से अछूती नहीं हैं। समाज में वैज्ञानिकता के विकास में देव संस्कृति विश्वविद्यालय महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर रहा है। प्रायः देश एवं विदेश के विश्वविद्यालयों में अध्यात्म, योग आदि को विज्ञान से अलग ही रखा गया है किन्तु पूरे विश्व में देव संस्कृति विश्वविद्यालय अपने ढंग का अनोखा विश्वविद्यालय है जहाँ आध्यात्मिक तथ्यों को जांचने ओैर परखने का कार्य सम्पन्न कर उसे वैज्ञानिकता प्रदान करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। अतः आध्यात्मिक मूल्यों तथा संस्कृति के सुरक्षा और संरक्षा की दृष्टि से गायत्री परिवार के शैक्षिक विचार वर्तमान समय में बहुत महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हैं।

मनोवैज्ञानिक मूल्य

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। मानवीय व्यवहार मानसिक या शारीरिक स्वस्थता पर निर्भर है। अतः मनोवैज्ञानिक मूल्य मानवीय मूल्यों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मनोवैज्ञानिक मूल्य को उच्च मूल्यों के अन्तर्गत रखा गया है जो चिन्तन, भावना तथा इच्छा में व्यक्ति की सांकल्पित तथा भौतिक प्रकृति पर आधारित होते हैं। गायत्री परिवार के शैक्षिक विचारों में मनोवैज्ञानिक मूल्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मानव मन की वर्तमान विखण्डित दशा को समझने के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। इसके आध ुनिक सिद्धान्तों को जांच-परखकर ही उसमें सुधार लाया जा सकता है। देव संकृति

विश्वविद्यालय में व्यसनों एवं कुरीतियों से मुक्ति पाने के लिए अध्ययन किया जाता है। यह मनोविज्ञान विभाग योग एवं आयुर्वेद के निर्देशन में संचालित है। इस विभाग में एक मनोवैज्ञानिक गड़बड़ी को दूर किया जाता है। आज हर व्यक्ति समस्याओं के जाल में फंस गया है। यहाँ के छात्र परिवीक्षाकाल में सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर लोगों को तनाव मुक्त करने का प्रयास कर रहे हैं। यदि मानसिक तनाव या मनोविकार दूर हो जाए तो बहुत से रोगों से लोगों को निजात मिल सकता है। अतः गायत्री परिवार के वैज्ञानिक मूल्य संबंधी विचार बहुत अधिक प्रासंगिक हैं।

भौतिक मूल्य

भौतिक मूल्य का गायत्री परिवार के शैक्षिक विचारों में बहुत अधिक महत्व नहीं दिया गया है किन्तु उसे बिल्कुल नकारा भी नहीं गया है। भौतिक मूल्य को मानव के भौतिक शरीर के लिए आवश्यक स्वीकारा गया है। गायत्री परिवार के शैक्षिक विचारों में भौतिक मूल्यों को विशेष महत्व इसलिए नहीं दिया गया है क्योंकि अन्य मूल्यों के विकास के साथ भौतिक मूल्य का विकास स्वतः हो जाता है क्योंकि यह शरीर की आवश्यकता से जुड़ा हुआ है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम को ऐसा रूप प्रदान किया गया है कि यहाँ से पढ़कर जाने के बाद छात्र स्वयं को भौतिक संसाधन के लिए व्यवसाय प्राप्त कर लेगा। ऐसे में देव संस्कृति विश्वविद्यालय भैतिक मूल्यों को जीवित रखते हुए आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं सामाजिक मूल्यों जैसे उच्च स्तरीय मूल्यों को विकसित करने में अग्रसर है। इससे स्पष्ट है कि विश्वविद्यालय भौतिक मूल्यों को ज्यादा महत्व नहीं प्रदान कर रहा है किन्तु उसे उपेक्षित भी नहीं रहने देना चाहता है।

पर्यावरणीय मूल्य

हमारे आस-पास जो भी दिखाई दे रहा है उसे हम वातावरण के नाम से जानते हैं। कुछ अदृश्य चीजें भी हैं जो वातावरण का अंग हैं- जैसे हवा। मनुष्य के विकास में वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान है। अच्छा वातावरण मिलने पर आदमी स्वस्थ रहता है। और उसमें अच्छे गुणों के विकास होते हैं जिसके कारण समाज, देश और यह संसार अच्छा बनता है। गायत्री परिवार औषधीय पौधों के संरक्षण तथा संवर्द्धन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है तथा वातावरण को शुद्ध रखने का हर संभव प्रयास कर रहा है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय तथा शांतिकुंज का वातावरण पूर्ण रूप से प्राकृतिक तथा सुरम्य बनाया गया है जिसका अनुकरण कर अन्य शिक्षण संस्थायें अपने परिसर में विभिन्न

प्रकार के वृक्षों को लगाकर तथा साफ–सफाई रखकर वहाँ के वातावरण को प्राकृतिक तथा सुरम्य बना सकती हैं जिसका प्रभाव विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ेगा।

स्वास्थ्य संबंधी मूल्य

स्वास्थ्य की महत्ता सर्वविदित है। गायत्री परिवार अपनी संस्थाओं के माध्यम से मानसिक एवं शारीरिक, दोनों ही अवस्थाओं को स्वस्थ रखने में तत्पर दिखायी पड़ता है। यहाँ यज्ञोपैथी से समस्त रोगों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। यज्ञ चिकित्सा के इस पक्ष का प्रयोग–परीक्षण की कसौटी पर कसने वाली यज्ञ चिकित्सा प्रयोगशाला है जिसमें बहुत से बहुमूल्य उपकरण हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्वास्थ्य संकाय स्थापित है जिसका उद्देश्य मनुष्य का सम्पूर्ण एवं समग्र स्वास्थ्य है। इसके अन्तर्गत रोगों की पहचान एवं निदान के साथ रोगरोधी उपायों का भी समावेश है। इसी दृष्टि से देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्वास्थ्य संकाय में आयुर्वेद की औषधि चिकित्सा के अतिरिक्त प्राकृतिक चिकित्सा, प्राण चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, चुम्बक चिकित्सा, रंग चिकित्सा, भौतिक चिकित्सा, मानसिक चिकित्सा, मंत्र चिकित्सा, रैकी आदि कि साथ–साथ योग को शामिल किया गया है। मनोविज्ञान को भी स्वास्थ्य से जोड़ा गया है। ध्यान और तप तो इसके विभिन्न अंग हैं ही।

वर्तमान समय में मानव शैली बिल्कुल परिवर्तित हो गयी है तथा बढ़ती हुई भौतिकता से पूर्ण रूप से प्रभावित हो चुकी है जिसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य की समस्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है। जटिल रोगों का प्रादुर्भाव तेजी से हो रहा है जिसके निदान के लिए आधुनिक चिकित्सा पर निर्भर होना पड़ता है। आधुनिक चिकित्सा इतनी खर्चीली है कि सामान्य व्यक्ति चिकित्सा नहीं करा सकता है। ऐसे में आयुर्वेद, योग चिकित्सा, यज्ञोपैथी के द्वारा किया गया उपचार न केवल रोग को नष्ट करने में सहायक हो रहा है अपितु रोगी को मानसिक रूप से सुदृढ़ बना रहा है। वर्तमान समय में ऐसी चिकित्सा पद्धति के विकास की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है क्योंकि इससे जटिल रोगों के उत्पन्न होने की संभावना कम हो जाती है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि आर्य समाज और गायत्री परिवार दोनों ही संस्थाएं मानव के उत्थान के लिए कार्य कर रही हैं। दोनों ही संस्थाओं की उपादेयता और प्रासंगिकता वर्तमान समय में है। स्वामी दयानन्द सरस्वती और

आचार्य श्रीराम शर्मा का स्वप्न पूरे मानव कल्याण के लिए 'सर्वजन हिताय' सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ... के लिए था। भारत ही नहीं अपितु विश्व समुदाय इन दोनों संस्थाओं के कृत कार्यों के ऋणी है। बदलते संक्रमण काल के इस दौर में आर्य समाज और गायत्री परिवार के शैक्षिक विचारों को सम्पूर्ण शिक्षा जगत में अंगीकार करने की महती आवश्यकता है।

संदर्भ

वर्मा, सत्यकाम, *वेदों में पर्यावरण विज्ञान,* श्री घूडमल प्रहलाद कुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट, हिण्डौन सिटी, राजस्थान, प्रथम संस्करण, 2005

वर्मा, सत्यकाम, *सत्यार्थ प्रकाश संदेश,* दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली, 1979

विद्यालंकार, डॉ. सत्यकेतु, *आर्य समाज का इतिहास,* भाग-1, आर्य स्वाध्याय केन्द्र, नई दिल्ली, 1988

विद्यालंकार, डॉ. सत्यकेतु, *भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास,* श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली, 2006

विद्यावाचस्पति, पं. हर्षवर्धन, *वैदिक धर्म के सनातन सिद्धान्त,* मधुर प्रकाशन, दिल्ली, 2005

विद्यार्थी, मंजुला, *ऋषि दयानन्द की हिन्दी भाषा और साहित्य को देन,* मुनिवर गुरुदत्त संस्थान, हिण्डौन सिटी, राजस्थान, 1991

वेदालंकार, क्षितीश, *दयानन्द दिव्य दर्शन,* सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली, 1976

वेदशास्त्री, पं. दीनबन्धु, *दयानन्द प्रसंग,* आर्य समाज कलकत्ता, 2003

वेदालंकार, डा. रामनाथ, *वैदिक नारी,* समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद, गाजियाबाद, उ.प्र., फरवरी, 2000

वेदप्रकाश, *महर्षि दयानन्द, आर्य समाज और हम,* वैदिक प्रकाशन, मेरठ, उ.प्र., 2005

विद्यालंकार, डॉ. सत्यकेतु, *आर्य समाज का इतिहास,* भाग-5, आर्य स्वाध्याय केन्द्र, नई दिल्ली, 1966

विद्यालंकार, सत्यदेव, *राष्ट्रवादी दयानन्द,* सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, 1995

विद्यालंकार, डॉ. निरूपण, *महर्षि दयानन्द की दृष्टि में कर्मकाण्डी,* श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री स्मारक समिति, आर्य समाज, करोलबाग, नई दिल्ली, 2008

रैड, एम.एस. ए. (संपादक): *सोशियल मूवमेंट इन इंडिया,* मनोहर नई दिल्ली, 1978

शारदा, हरविलास, *लाईफ ऑफ दयानन्द सरस्वती: वर्ल्ड टीचर,* परोपकारिणी सभा, अजमेर, 1968

सत्य प्रकाश, *ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ फिलासॉफी ऑफ दयानन्द,* अजमेर, 1938

शर्मा श्री राम, *स्वामी दयानन्द एंड द थियोसोफिकल सोसायटी,* पंजाब विश्वविद्यालय शोध बुलेटिन, 1973

शर्मा, दिवान, स्वामी दयानन्द सरस्वती, मैकमिलन कं. लन्दन, 1935

सिंह, बी.के. : स्वामी दयानन्द, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 1970

उपाध्याय, गंगा प्रसाद : फिलासॉफी ऑफ दयानन्द, इलाहाबाद, 1997

यादव, के.वी. : ऑटोबायोग्राफी ऑफ दयानन्द सरस्वती, मनोहर बुक सर्विस, नई दिल्ली, 1978

पत्र-पत्रिकाएं

आर्य जगत (साप्ताहिक), आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभी मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली।

आर्य मर्यादा (साप्ताहिक), आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का मुखपत्र।

आर्य सेवक (मासिक) आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्य प्रदेश व विदर्भ, नागपुर।

आलोचना, (त्रैमासिक), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

कादम्बिनी (मासिक) हिन्दुसीन टाइम्स, दिल्ली का प्रकाशन

गोधन (मासिक), भारत गोसेवक समाज, दिल्ली

जनज्ञान (साप्ताहिक), दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली

तपोभूमि (मासिक) सत्य प्रकाशन, मथुरा

अखण्ड ज्योति, मथुरा

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त 2017

शोध टिप्पणी/संवाद

माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य-संलग्नता का अध्ययन

मधु गुप्ता* एवं **विनीता सिंह****

प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की यौन-भिन्नता, आयु, जाति, व्यावसायिक योग्यता, नियुक्ति की प्रकृति एवं शिक्षण अनुभव के परिप्रेक्ष्य में कार्य-संलग्नता का अध्ययन करना है। शोध अध्ययन हेतु प्रतिदर्श के रूप में 150 शिक्षकों का चयन आकस्मिक विधि से किया गया। शिक्षकों की कार्य-संलग्नता के मापन हेतु लॉडहल व केजनर (1965) द्वारा निर्मित जॉब इंवाल्वमेंट स्केल का हिन्दी रूपांतर कार्य-संलग्नता मापनी का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषण के संदर्भ में मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात सांख्यिकीय प्रविधियों को प्रयुक्त किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषणोपरांत व्यावसायिक योग्यता, आयु तथा शिक्षण अनुभव का कार्य-संलग्नता पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

किसी भी विद्यालय की शोभा उसमें खिलने वाले सुन्दर फूलों, हरी घास, आरामदायक फर्नीचर तथा भव्य इमारत से नहीं होती, बल्कि कर्मठ, कुशल, योग्य व क्रियाशील अध्यापकों से होती है। यही कारण है कि शिक्षक को विद्यालय संगठन का हृदय कहा गया है। परन्तु जब यही शिक्षक अपने कार्य से विमुख हो जाए तब विद्यालय के साथ-साथ सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था चरमरा कर ढह जाएगी क्योंकि शिक्षक ही राष्ट्र के भविष्य निर्माता हैं (कबीर, हुँमायू)। अत: आवश्यक है कि वह सदैव कार्य-संलग्न रहे जिससे शिक्षा व्यवस्था प्रगति पथ पर अग्रसर हो सके।

* विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, कु. आर.सी. महिला महाविद्यालय, मैनपुरी।
** सम्पर्क: ब्लॉक रोड, इन्द्रा नगर, अलीगढ़।

प्रत्येक व्यावसायिक संगठन की प्रगति हेतु तकनीकी विकास के साथ-साथ मानव व्यवहार भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व से निर्धारित होकर कार्य-संलग्नता को निश्चित करता है। लियाओ, शी शुन व चेंग वेन (2009) के शोध अध्ययन से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के मुख्य शीलगुण कार्य-संलग्नता पर विभिन्न कारक प्रभाव डालते हैं। उन्माद कार्य संलग्नता पर नकारात्मक जबकि बहिर्मुखता, खुलापन, प्रसन्नता आदि कारक कार्य-संलग्नता पर धनात्मक प्रभाव डालते हैं।

किसी भी संगठन की प्रभावशीलता में वृद्धि, संगठन के सदस्यों से उच्च स्तरीय कार्य-संलग्नता की अपेक्षा करती है (एलेंकुमारन, 2004)। क्योंकि कार्य-संलग्नता किसी भी संगठन की प्रगति व प्रभावकारिता हेतु मुख्य प्रेरक है। चुगताई, आमिर अली (2008) ने भी अपने शोध अध्ययन में स्पष्ट किया है कि कार्य-संलग्नता प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से संगठनात्मक समर्पण को बढ़ाती है। दीगर, एक्येय (2009) एवं खाँ, तारिक इकबाल व अन्य (2011) ने भी अपने शोध अध्ययनों में संगठनात्मक समर्पण तथा कार्य-संलग्नता में धनात्मक सह-संबंध पाया।

अत: कार्य-संलग्नता व्यवसाय के प्रति प्रभावी समर्पण का ही पर्याय है। दोनों संयुक्त रूप से कार्य करते हैं व समान योगदान देते हैं। सामान्य अर्थों में, किसी व्यक्ति का उसके कार्य अथवा व्यवसाय के प्रति लगाव ही उसकी कार्य-संलग्नता दर्शाता है।

अत: जब व्यक्ति का मनस् पूर्णतया व्यवसाय संबद्ध हो जाए, यही कार्य-संलग्नता की अवस्था है। यही कारण है कि कर्मचारी से आत्मिक योगदान के रूप में कार्य-संलग्नता की अपेक्षा की जाती है (मुड्राक, 2004)। व्यक्ति की निम्न कार्य-संलग्नता उसकी अपने उद्देश्य से अलगाव, संगठन से अलगाव व जीवन के प्रति नजरिये और किये जा रहे व्यवसाय के मध्य की पृथकता को दर्शाता है। व्यक्ति की कार्य-संलग्नता तभी उच्च होगी, जब वह जीवन व व्यवसाय में भली प्रकार समायोजित होगा।

अन्य व्यवसायों की अपेक्षा शिक्षक का शिक्षण व्यवसाय में कार्य-संलग्न होना अति आवश्यक है क्योंकि शिक्षक ही राष्ट्र की प्रगति का सच्चा सूत्रधार है। माध्यमिक स्तर पर उसकी कार्य-संलग्नता और भी आवश्यक हो जाती है क्योंकि यह ऐसा तीव्र मोड़ है जो छात्र के भविष्य को नवीन दिशा प्रदान करता है और शिक्षक के अभाव में उसका भ्रमित हो जाना सहज है। अत: माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य-संलग्नता का क्या स्तर है? शिक्षकों के कार्य-संलग्नता पर यौन-भिन्नता, आयु,

जाति, व्यावसायिक योग्यता, शिक्षण अनुभव आदि चरों का क्या प्रभाव पड़ता है? क्या स्थायी व अस्थायी शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई अन्तर पाया जाता है? प्रस्तुत शोध इन्हीं प्रश्नों को जानने हेतु किया गया एक प्रयास है।

अध्ययन के उद्देश्य

(i) यौन-भिन्नता के परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों की कार्य-संलग्नता का अध्ययन करना।

(ii) आयु के परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों की कार्य-संलग्नता का अध्ययन करना।

(iii) सामान्य व आरक्षित वर्ग के शिक्षकों की कार्य-संलग्नता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(iv) प्रशिक्षित व अप्रशिक्षित शिक्षकों की कार्य-संलग्नता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(v) स्थायी व अस्थायी शिक्षकों की कार्य-संलग्नता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(vi) शिक्षण अनुभव के परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों की कार्य-संलग्नता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनायें

(i) महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

(ii) 35 वर्ष से कम तथा 35 वर्ष से अधिक आयु वर्ग वाले शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

(iii) सामान्य वर्ग एवं आरक्षित वर्ग के शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

(iv) प्रशिक्षित व अप्रशिक्षित शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

(v) स्थायी व अस्थायी शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

(vi) 12 वर्ष से अधिक एवं 12 वर्ष से कम अनुभव अवधि वाले शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

अध्ययन विधि

वर्तमान अध्ययन के संदर्भ में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि को प्रयुक्त किया गया।

प्रतिदर्श

प्रस्तुत शोध के संदर्भ में गाजियाबाद जिले में स्थित माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापनरत 150 शिक्षकों का आकस्मिक विधि से चयन किया गया। चयनित प्रतिदर्श का यौन-भिन्नता, आयु, जाति, व्यावसायिक योग्यता, नियुक्ति की प्रकृति व शिक्षण अनुभव के अनुसार वितरण तालिका-1 में दर्शाया गया है।

तालिका-1

चयनित प्रतिदर्श का यौन-भिन्नता, आयु, जाति, व्यावसायिक योग्यता, नियुक्ति की प्रकृति व शिक्षण अनुभव के अनुसार वितरण (N=150)

समूह	**यौन-भिन्नता**		**आयु वर्ग**		**जाति वर्ग**		**व्यावसायिक योग्यता**		**नियुक्ति की प्रकृति**		**शिक्षण अनुभव**	
	महिला	पुरुष	35 वर्ष से अधिक	35 वर्ष से कम	सामान्य	आरक्षित	प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	स्थायी	अस्थायी	0-12 वर्ष	12 वर्ष से अधिक
संख्या	89	61	67	83	85	65	81	69	65	85	90	60
कुल	**150**		**150**		**150**		**150**		**150**		**150**	

उपकरण

वर्तमान शोध अध्ययन के संदर्भ में शिक्षकों की कार्य-संलग्नता के मापन हेतु लॉडहल व केजनर (1965) द्वारा निर्मित जॉब इंवाल्वमेंट स्केल का हिन्दी रूपान्तर 'कार्य-संलग्नता मापनी' का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ

एकत्रित प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात प्रविधियाँ प्रयुक्त की गयीं।

तालिका-2

विभिन्न चरों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों की कार्य-संलग्नता संबंधी प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात मान

चर	वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
यौन भिन्नता	महिला	89	64.10	7.70	01.60	>.05
	पुरुष	61	64.50	10.70		
आयु वर्ग	35 वर्ष से कम	77	62.95	8.10	05.43	<.01
	35 वर्ष से अधिक	73	65.45	9.00		
जाति वर्ग	सामान्य	85	64.40	8.40	0.93	>.05
	आरक्षित	65	64.85	10.05		
व्यावसायिक योग्यता	प्रशिक्षित	81	63.45	9.20	03.08	<.01
	अप्रशिक्षित	69	64.90	8.30		
नियुक्ति की प्रकृति	स्थायी	65	65.05	10.00	01.66	>.05
	अस्थायी	85	64.25	8.45		
शिक्षण अनुभव	12 वर्ष से कम	88	63.55	9.65	03.66	<.01
	12 वर्ष से अधिक	62	65.20	9.70		

परिणाम

एकत्रित प्रदत्तों के विश्लेषणोपरान्त प्राप्त परिणामों को तालिका-2 में दर्शाया गया है।

तालिका-2 में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट होता है कि-

(i) महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है क्योंकि प्राप्त क्रांतिक अनुपात (01.60) .05 स्तर पर सार्थक नहीं है।

अत: कहा जा सकता है कि कार्य-संलग्नता पर यौन-भिन्नता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(ii) 35 वर्ष से कम आयु वर्ग के शिक्षकों की तुलना में 35 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के शिक्षकों में कार्य-संलग्नता उच्च-स्तर की दृष्टिगोचर हो रही है। इस तथ्य की

पुष्टि इस वर्ग के कार्य-संलग्नता संबंधी क्रान्तिक अनुपात (5.43) जो .01 स्तर पर सार्थक है, से हो रही है।

(iii) सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, क्योंकि प्राप्त क्रांतिक अनुपात (0.93) .05 स्तर पर सार्थक नहीं है।

(iv) प्रशिक्षित शिक्षकों की अपेक्षा अप्रशिक्षित शिक्षकों में कार्य-संलग्नता उच्च स्तर की परिलक्षित हो रही है, क्योंकि प्राप्त क्रांतिक अनुपात (3.08) .01 स्तर पर सार्थक है।

(v) स्थायी व अस्थायी नियुक्ति वाले शिक्षकों मे समान रूप से कार्य-संलग्नता परिलक्षित हो रही है, क्योंकि प्राप्त क्रांतिक अनुपात (1.66) .05 स्तर पर सार्थक नहीं है।

(vi) 12 वर्ष से कम शिक्षण अनुभव वाले शिक्षकों की अपेक्षा 12 वर्ष से अधिक शिक्षण अनुभव वाले शिक्षकों में कार्य-संलग्नता उच्च स्तर की परिलक्षित हो रही है। इसकी पुष्टि प्राप्त क्रांतिक अनुपात (3.66) से भी होती है जो .01 पर सार्थक है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षकों की कार्य-संलग्नता पर शिक्षण अनुभव का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

विवेचना

उपर्युक्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि यौन-भिन्नता शिक्षक की कार्य-संलग्नता को प्रभावित नहीं करती है। माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई सार्थक अन्तर न होने का संभावित कारण उक्त दोनों समूहों को समान प्रशिक्षण प्राप्त होना, समान सुविधाएं मिलना व महिलाओं का रोजगार के प्रति पहले की तुलना में अधिक जागरूक होना हो सकता है। इसलिए महिलाएं पारिवारिक उत्तरदायित्वों के साथ-साथ व्यवसाय संबंधी कार्यों को भी महत्व देती हैं जिससे उनमें पुरुषों के समान ही व्यवसाय संलग्नता दृष्टिगोचर हो रही है।

महिला अथवा पुरुष दोनों ही व्यावसायिक कुशलता अर्जित करने हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं जिससे वह व्यवसाय संबंधी समस्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथ्यों से अवगत हो सकें। परन्तु सामान्यतः प्रशिक्षण के अनुरूप शिक्षक व्यावहारिक जीवन में शिक्षण कार्य नहीं करते हैं। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक निष्ठा, समर्पण, ईमानदारी आदि व्यक्ति के आन्तरिक मूल्य हैं, जो स्वतः विकसित होते हैं, प्रशिक्षण द्वारा नहीं। अतः अप्रशिक्षित शिक्षकों की व्यावसायिक निपुणता प्राप्त करने के प्रयास में व्यवसाय के प्रति उच्च स्तर की कार्य-संलग्नता प्रदर्शित हो रही है।

व्यावसायिक योग्यता हो या न हो, शिक्षक की आयु व अनुभव में वृद्धि उसकी कार्य-संलग्नता में वृद्धि करती है। लम्बी अवधि तक व्यवसाय में कार्यरत रहते हुए वह व्यवसाय संबंधी समस्त परिस्थितियों से भलीभांति परिचित हो जाता है व उसमें समायोजित होने की कला सीख लेता है। समय व्यतीत होने के साथ व्यवसाय जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है। यही कारण है कि आयु व अनुभव में वृद्धि व्यवसाय पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। इस तथ्य की पुष्टि शाह, बीना (1996) के अध्ययन परिणाम से भी होती है। इन्होंने अपने शोध अध्ययन में स्पष्ट किया है कि प्रशिक्षित परास्नातक शिक्षक, प्रशिक्षित स्नातक स्तर की तुलना में सार्थक रूप से श्रेष्ठ होते हैं, जिसका मुख्य कारण उनका अनुभवी होना है। इसी प्रकार मिश्रा, जया (2009) ने भी अपने शोध में अनुभवी अध्यापकों में व्यावसायिक प्रतिबद्धता उच्च स्तर की पायी ।

शैक्षिक संस्थानों में शिक्षकों को उनकी योग्यता के आधार पर नियुक्त किया जाता है, जाति विशेष के आधार पर नहीं। इसीलिए सामान्य या आरक्षित वर्ग होने से कार्य-संलग्नता प्रभावित नहीं होती। इसी प्रकार संस्था संबंधी योजनाओं व नीतियों के संबंध में स्थायी व अस्थायी शिक्षकों की समान सहभागिता सुनिश्चित की जाती है तथा शिक्षकों का मूल्यांकन विद्यालय प्रबंधक व प्रधानाचार्यों द्वारा किया जाता है, जिससे वे अपने दायित्वों के प्रति अधिक सतर्क रहते हैं, इसीलिए स्थायी व अस्थायी शिक्षकों की कार्य-संलग्नता में कोई अन्तर नहीं पाया गया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त शोध परिणामों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यौन-भिन्नता, जाति वर्ग व नियुक्ति की प्रकृति का शिक्षकों की कार्य-संलग्नता पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि शिक्षकों की आयु, शिक्षण अनुभव व व्यावसायिक योग्यता कार्य-संलग्नता को सार्थक रूप से प्रभावित करती है।

संदर्भ

अभिलाषा व गोगना, एस.के. (2009): *शिक्षकों की शिक्षण तथा शिक्षण प्रभावशीलता के प्रति अभिवृत्ति का सहसम्बन्धात्मक अध्ययन.* डी.ई.आइ. फोएरा ; जनवरी; पृ. 34-35.

एलेंकुमारन (2004): *पर्सनैलिटी, ऑर्गेनाइजेशनल क्लाइमेट एण्ड जॉब इन्वॉल्वमेण्ट : एन इम्पीरिकल स्टडी.* जनरल ऑफ ह्यूमन वैल्यूज, 10; पृ. 117-130.

कबीर, हुमायूँ संदर्भित शर्मा, कुसुम (2012): *विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा.* आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर; पृ. 117.

खाँ, तारिक इकबाल व अन्य (2011): जॉब इन्वॉल्वमेंट एज़ प्रिडिक्टर ऑफ इम्प्लॉयी कमिटमेन्ट : एविडेन्स फ्रॉम पाकिस्तान. इन्टरनेशनल जरनल ऑफ बिजनेस एण्ड मैनेजमेण्ट; 96 (4); पृ. 252-262.

गुप्ता, मधु व मिश्रा, जया (2011): जनांकिकीय चरों के परिप्रेक्ष्य में प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन. ह्यूमनिटीज़ एण्ड सोशल साइन्सेज : इण्टरडिसीप्लीनरी एप्रोच; 3(2); पृ. 105-107.

गैरेट, एच.ई. (1985): *स्टेटिस्टिक इन सॉइक्लोजी एण्ड एजूकेशन*. मुम्बई, वकील्स फीफर एण्ड साईमोन्स लिमिटेड

चुगताई, आमिर अली (2008) : इम्पैक्ट ऑफ जॉब इन्वॉल्वमेन्ट ऑन इन-रोल जॉव परफॉरमेन्स एण्ड ऑर्गेनाइजेशनल सिटिजन बिहेवियर इन्स्टीट्यूट ऑफ बिहेवियरल एण्ड एप्लाइड मैनेजमेण्ट; डब्लिन यूनिवर्सिटी आयरलैण्ड; पृ. 169-183.

दीगर, एक्येय (2009) : ए स्टडी इन टू ऑर्गेनाइजेशनल कमिटमेन्ट एण्ड जॉब इन्वॉल्वमेन्ट : एन एप्लीकशन टूवर्ड द पर्सनल इन द सेन्ट्रल ऑर्गेनाइजेशन फॉर मिनिस्ट्री ऑफ हेल्थ इन टर्की. ओजीन जरनल ऑफ एप्लाइड साइन्स ; 2 (11); पृ. 113-125.

मुड्रॉक, पी.ई. (2004): जॉब इन्वॉल्वमेण्ट, ऑब्सेसिव-कम्पलसिव पर्सनैलिटी ट्रेट्स एण्ड वर्कहालिक बिहेवियरल टैन्डेन्सीज. जरनल ऑफ ऑर्गेनाइजशनल चेन्ज मैंनेजमेण्ट; 17; पृ. 490-508.

बेस्ट जॉन डब्ल्यू एवं खान, जेम्स वी0 (2004): *रिसर्च इन एजुकेशन*. नई दिल्ली : प्रेन्टिस हॉल ऑल इण्डिया प्रा.लि.

लॉडहल व केजनर (1965): *जॉब इन्वाल्वमेन्ट स्केल*, लियाओ, शी शुन व चेंग वेन (2009) : एन इम्पेरीकल स्टडी ऑफ एम्प्लॉयी

जॉब इन्वॉल्वमेन्ट एण्ड पर्सनैलिटी स्ट्रैस : द केस ऑफ ताइवान– इन्टरनेशनल जरनल ऑफ इकॉनामिक्स एण्ड मैनेजमेण्ट 3 (1) : पृ. 22-36.

शाह, बीना (1991): *डिटरमिनेन्ट्स ऑफ टीचर इफैक्टिवनेस*. सन्दर्भित

एम.बी. बुच (संपादक), *फिफ्थ सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च;* नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.; पृ. 1480.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त 2017

शोध टिप्पणी/संवाद

बच्चों की स्कूल के प्रति उदासीनता

संतोष यादव* एवं **रजनी सिंह***

स्कूल एक ऐसी सामाजिक संस्था है जो एक प्राकृतिक प्राणी को सामाजिक प्राणी बनाती है। इन अर्थों में यह संस्था सामाजीकरण की एक महत्वपूर्ण संस्था बन जाती है। स्कूल में प्रायः बच्चे अनुभवों से प्राप्त ज्ञान से इतर संसार जगत में व्याप्त तमाम तरह के ज्ञानात्मक अनुशासनों से मुखातिर होते हैं। कई बार ज्ञान के इन अनुशासनों से मुखातिर होने की प्रक्रिया में बच्चे का अनुभव जगत इतना पीछे छूट जाता है कि स्कूली जगत और बच्चे का अपना संसार दो अलग-अलग दुनिया के रूप में सामने आते हैं जैसे रविन्द्रनाथ टैगोर ने अपने भाषण 'मेरा स्कूल' में कहा है कि ''स्कूल में हम बच्चे को भूगोल पढ़ाते हैं और उसे उसकी ही जमीन से काट देते हैं''। प्रस्तुत लघु शोध में इसी 'कटाव' को बच्चे के दृष्टिकोण से जानने का प्रयास किया गया है। इस लघु शोध का विषय है 'कुछ बच्चे स्कूल जाना पसंद क्यों नहीं करते हैं?' इस विषय के चयन का आधार पी-एच.डी. प्रोग्राम के दौरान सहभागी शोधार्थियों के साथ हुई सामूहिक चर्चा से प्राप्त जानकारी व व्यक्तिगत अवलोकन है जिनमें प्रायः यह देखा जाता है कि कुछ बच्चे स्कूल जाना पसंद नहीं करते हैं और वह स्कूल न जाने के लिए नित नए-नए बहाने या स्कूल से बचने के तरीके ढूंढ़ते रहते हैं। दूसरा आधार है, कुछ विचारकों की सैद्धांतिक समझ, जिसमें मुख्य हैं– रवीन्द्रनाथ टैगोर, जॉन होल्ट एवं इवॉन इलीच।

प्रस्तुत विषय से संबंधित शोध प्रश्न इस प्रकार हैं:

1. कुछ बच्चे स्कूल जाना पसंद क्यों नहीं करते हैं?
2. स्कूल जाना पसंद न करते हुए भी वह स्कूल के साथ किस प्रकार सामंजस्य स्थापित करते हैं?

*पी-एच.डी. शोधार्थी, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
E-mail: santoshyadavmdd@gmail.com, rajnisingh11ms@gmail.com

3. स्कूल न होने की स्थिति को वह कैसे देखते हैं?

इन प्रश्नों की खोज के लिए हमारे कुछ दिशा निर्देशक उद्देश्य भी रहे, जो इस प्रकार हैं:

1. कुछ बच्चे स्कूल जाना पसंद नहीं करते उन कारणों को जानना।
2. स्कूल जाना न पसंद करते हुए भी वह स्कूल के साथ किस प्रकार सामंजस्य व प्रतिरोध करते हैं उन तरीकों को जानना।
3. इन बच्चों के संदर्भ में 'स्कूल न होने' की स्थिति को जानना।

शोध प्रवधि : प्रस्तुत शोध के लिए शोध उपकरण के रूप में 'व्यापक' साक्षात्कार का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ों का संकलन : इस शोध में आंकड़ों के संकलन के लिए दो शोधार्थियों द्वारा दो अलग-अलग बच्चों से साक्षात्कार किये गए। एक साक्षात्कार नौवीं कक्षा का था और एक साक्षात्कार छठी कक्षा के बच्चे का था। इन दोनों साक्षात्कारों में से छठी कक्षा के बच्चे के साक्षात्कार का चयन किया गया क्योंकि बाकी अन्य साक्षात्कार की तुलना में यह साक्षात्कार अपेक्षाकृत कहीं गहरा और विस्तृत था।

आंकड़ों का प्रस्तुतिकरण : बच्चे से लिए गए 40 मिनट के साक्षात्कार को लिखित प्रतिलिपि में तैयार किया गया। इस लिखित प्रतिलिपि में दोनों शोधार्थियों द्वारा कोडिंग एवं वर्गीकरण की प्रक्रिया पूरी की गई जिसका एक प्रस्तुतिकरण यहाँ एक तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है:

तालिका-1

कोडिंग एक	कोडिंग दो	वर्गीकरण	वर्गीकरण व शोध उद्देश्य
बुलिंग	बड़े छात्रों का डर	बड़े छात्रों का हिंसात्मक व्यवहार	स्कूल न जाने के कारण
पढ़ाई न होना	शिक्षक का व्यवहार	शिक्षक का पढ़ाने के प्रति व्यवहार एवं नजरिया	स्कूल न जाने के कारण
मारना, पीटना, धमकी देना	सजा के रूप में मारना, नाम काटना	शिक्षकों का बच्चों के प्रति रवैया	स्कूल न जाने के कारण

बैग में खेलने का सामान लाना	खेलने की सामग्री छिपा कर लाना	स्कूल के साथ सामंजस्य के तरीके	सामंजस्य की प्रक्रिया
क्लास बंक करना/ क्लास 'गोली करना'	क्लास अटेंड नहीं करना, डिफेन्स मेकैनिज्म	स्कूल से प्रतिरोध के के तरीके	प्रतिरोध के तरीके
पूरा स्कूल तोड़ने की इच्छा	'फिलोट', समतल मैदान बना देना	'स्कूल न होने' की कल्पना	'स्कूल न होने' की स्थिति

'गहन' साक्षात्कार की समझ बनाने के लिए पढ़ा गया साहित्य :

शोध में साक्षात्कार की अवधारणा को समझने के लिए एक लेख एवं एक वर्कबुक की सहायता ली गई – गहन साक्षात्कार लेने से पहले '*Wallace Foundation Workbook E: Conducting In-Depth Interviews*' का अध्ययन किया गया जिसके तहत पता चला कि एक शोधार्थी को साक्षात्कार लेने से पहले इन बातों की स्पष्टता होनी चाहिए :

पहला, यह कि आंकड़े एकत्रित किससे करने हैं?

दूसरा, यह कि शोध के दौरान, क्या देखने का प्रयास किया जा रहा है?

अंत में यह कि, आंकड़े कहाँ से मिलेंगें?

किस प्रकार के प्रश्न पूछने चाहिए इस पर भी वर्क बुक में विस्तार से चर्चा की गई है जैसे– प्रोबिंग प्रश्न, ओपन एंडेड प्रश्न, रिफ्लेक्टिव प्रश्न आदि जिनमें साक्षातकर्ता को खुद से कम–से–कम उदाहरण देते हुए साक्षात्कार देने वाले को अपनी बात रखने का अवसर देना चाहिए। साक्षातकर्ता द्वारा उदाहरणों के ज्यादा प्रयोग से यह सम्भावना बन जाती है कि साक्षात्कार देने वाले की बातें साक्षातकर्ता की बातों से प्रभावित हो जाएं।

जॉन रिच, अपने लेख 'Interviewing Children and Adolescents' में कहते हैं कि साक्षात्कार के प्रकारों से अधिक साक्षात्कारों के प्रकार्यों को समझना चाहिए। यह लेख बच्चों से बात करने के कौशलों व संभावनाओं पर चर्चा करता हैं। यह दोनों ही लेख इन–डेप्थ साक्षात्कार की समझ बनाने में शोधार्थियों के लिए सहायक रहे।

बच्चे के साक्षात्कार द्वारा कई ऐसी बातें पता चलीं कि एक भावी शिक्षिका के रूप में अपनी खुद की भूमिका पर लगातार एक अजीब–सा भार महसूस होने लगा। पता चला कि 'व्यवस्था' कैसे एक बच्चे की दुनिया को तार–तार कर देती है और

बच्चे का कोमल मन उस व्यवस्था से बचने ले लिए कई अन्य तरह के विकल्प तलाशने लगता है।

हमारे पहले प्रश्न का उत्तर जिस सहजता से बच्चे ने दिया, वास्तव में उसे सुनने की प्रक्रिया झकझोर देने वाली थी और हम लगातार उन परिस्थितियों से परिचित हो रहे थे जो बच्चे को स्कूल पसंद न करने के लिए काफी थी।

आंकड़ों का प्रस्तुतिकरण

बच्चे के साक्षात्कार से जो मुख्य बातें उभर कर सामने आयीं वो इस प्रकार थीं:

(1) स्कूल के प्रिंसिपल बच्चों को मारते-पीटते और धमकाते हैं जिसका जिक्र बच्चे की बातों में इस प्रकार आता है:

''ऐ स्कूल में न जब प्रिंसिपल आता है न तो डंडा फेंक कर मारता है, हाँ बुड्ढा डंडा लेकर घूमता है''... और बच्चे जो 'गोली' करते हैं (स्कूल से भागते हैं) न अगर हमारा प्रिंसिपल पकड़ लेता है न तो बहुत मारता है, नाम काट देता है'' बच्चे द्वारा प्रिंसिपल का डर महसूस करना और उन्हें बुड्ढा कहकर संबोधित करना उनके और बच्चे के बीच की दूरी का भाव व्यक्त करता है।

(2) इसी प्रकार का डर बच्चे कुछ शिक्षकों से भी महसूस करते हैं। बच्चा शिक्षकों के बारे में जिस तरह की बातें बोल रहा था उससे पता चलता है कि शिक्षक बच्चों के प्रति दोयम दर्जे का रवैया रखते हैं और बच्चों को मारना-पीटना, गाली देकर बात करना, धमकी देना, समय पूरा होने से पहले क्लास छोड़कर चले जाना, बच्चों का खाना मांग कर खाना जैसी घटनाएं विद्यालय में होती रहती हैं. उदाहरण के लिए एक शिक्षक द्वारा बात-बात पर गाली दिए जाने और पीटने का जिक्र बच्चे ने इस तरह किया है।

''...यूँ कहते हैं कि कम बच्चे करने हैं मुझको और पूरी गाली बकता है वो मास्टर''
''...यूँ कहेगा ..., एक-एक को ... के नाम कटवाऊंगा, अभी रुक जाओ तुम्हारे...''

''जो ड्रेस पहनकर नहीं आएगा न उन्हें भगा देगा, हाजरी भी नहीं लगाएगा, कोई सर मारेंगे न आठवीं के बच्चों को तो यूँ कहेगा कि मारो ... को, हाथ-पाँव तोड़ दो ... का, मम्मी-पापा आएगा देखने को कि कैसे मेरा बच्चा टूट गया (जोर से हँसते हुए)...

नाम कटवाने की धमकी भी दी जाती है। बच्चा कहता है कि– ''और बिना

फालतू में बच्चे भागेंगे भी नहीं न, लाल कार्ड से नहीं होते?... उन पर नाम चढ़ा देगा कि ये बच्चा भाग रहा था और मम्मी पापा से साइन करवा आएगा फिर आकर नाम कटवा देगा... आधे बच्चे तो आते भी नहीं...''

समय पूरा होने से पहले ही शिक्षक क्लास छोड़कर चले जाते हैं और बच्चे भाग जाते हैं. बच्चे ने बताया कि ''दीदी देखो, दूसरा पीरियड लगने वाला है सर जी पहले ही चले जाते हैं फिर बच्चे भागते हैं बहुत तेज नीचे।''

शिक्षकों का बच्चों की पढाई के प्रति रवैया भी बच्चों को परेशान करता है बच्चे ने एक ऐसे शिक्षक का जो बच्चों को परेशान करता है, परिचय इस तरह दिया: ''सर जी हैं न कान में लीड (ear phone) लगाकर पढ़ाते ही नहीं हैं और गाने सुनते रहते हैं हरदम...''

इसके बाद बच्चा एक और शिक्षक के बारे में बताता है कि कैसे वह शिक्षक बच्चों से उनकी खाने की चीजें मांग कर खा जाते थे जिसका नाम बच्चों ने 'चिटोरा' रखा हुआ था. बच्चा कहता है कि- ''... मेरी क्लास में न एक मास्टर चिटोरा है, पहले मैथ का आया करता था वो अब नहीं आता वो. ... कोई बच्चा चीज खा रहा होगा न, मांग लेगा उससे. ... यूँ कहेगा मेरे को दे दे 'बाबू' खाने को और लेकर खा लेगा, दूकान वाले से भी मांग लेता है, एक बार प्रिंसिपल सर ने देख लिया था और 'नाम काट दिया'... नहीं, नौकरी से भगा दिया उस वाले टीचर को।

(3) बड़ी कक्षा के छात्रों द्वारा भी छोटी कक्षा के बच्चों को डराया, धमकाया व मारा-पीटा जाना अक्सर होता रहता है, गाली देना व सामान की छिना-झपटी की शिकायत भी छोटे बच्चों द्वारा की गयी जैसे कि–

''ऐ ये बारहवीं वाले आते हैं न स्कूल में, 'गोली' करते हैं, और ये आठवीं वाले भी, नौवीं वाले भी। ... और पैसे भी छीन लेते हैं, बेल्ट भी छीन लेते हैं, कोई सी भी। ...गद्ढे वाले स्कूल में भी। ... मैं पहन कर ही नहीं जाता बेल्ट। एक बार मेरी छिनने वाली थी, बच गयी, मैंने घर में रख दी, अब बस आने जाने में पहनता हूँ बेल्ट।''

''वो ... था न, चौक वाले स्कूल में, उसकी तो गर्दन मोड़कर न डंडी डंडी बजाई थी, बड़े लड़कों ने।''

''पैसे भी छीनते हैं, एक लड़का तो 100 रुपये लाया, 100 रुपये छीन लिए और किताब भी बेचते हैं हमारे स्कूल में बच्चे, '...' आते हैं न, पकड़ लेंगे और छीन लेंगे और किताबें रख लेंगे फिर बैग फेंक देंगे।''

बड़े छात्रों के डर की वजह से बच्चे अपने रास्ते बदल-बदल कर स्कूल तक पहुँचते हैं। उदाहरणत: ''मै बताऊँ किधर से जाता हूँ, जहाँ हरी ओम गार्डन है न, उधर एक गली जा रही, उधर से जाता हूँ।''

(4) स्कूल में बुनियादी सुविधाएँ जैसे बैठने की व्यवस्था, स्वच्छ पानी, साफ कक्षाएं, खुली-चौड़ी सीढियां आदि का अभाव भी है जिनका पता बच्चे की तमाम बातों से आसानी से लगाया जा सकता है उदाहरण के लिए: ''ऐ... वो दरी पर बिठाते हैं, वो एक बड़ी-सी दरी ले आएँगे और उस पर बिठा देंगे, उसमें घुट्टम घुट्टा होती है... देखो इधर जीना (सीढ़िया, हैं) हाथ का इशारा करते हुए , सीढियाँ उतरने की ओर उधर ईंट की दीवार नहीं है, मैं तो वहीं बैठ जाता हूँ।''

''ये सर जी कहेंगे, पूरे बच्चे उसी दरी पर बैठेंगे।''

''क्लास होए ना, उसमें जैसे मार्बल का पत्थर होए ना, फिर अच्छा लगता है स्कूल, वो फर्श होता है ना तो झाड़ू वाली झाड़ू भी नहीं मारती। कोई-कोई बच्चा झाड़ू उठा लेता है ओर मार देता है।''

''एक बार न स्कूल में पानी में न बिल्ली मर गई थी, ओर वो बच्चे पीते है.. ... मैं स्कूल में 'थैली' खरीद लेता हूँ।'' (बच्चों के पीने के लिए स्वच्छ पानी तक स्कूल में उपलब्ध नहीं है जिसके कारण उन्हें पानी तक खरीदना पड़ता है)।

यह कुछ ऐसी वजहें यहाँ प्रतिबिंबित की गईं जो स्कूल को बच्चों के लिए रुचिकर बनाने में असफल कर रही है। स्कूल की इस असफलता के बाद भी ये बच्चे स्कूल जाते हैं। कई बार पूरा समय रुकते भी हैं । इस खण्ड में उन बिन्दुओं की व्याख्या की जायगी जो यह दर्शाती हैं कि किस प्रकार ये बच्चे स्कूलों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं और कौन से ऐसे तरीके हैं जिन्हें यह स्कूल की इस संस्कृति के प्रतिकार के लिए इस्तेमाल करते हैं। साक्षात्कार के दौरान ऐसे उदाहरण सामने आये जो यह दर्शाते हैं कि यह बच्चे स्कूल के परिवेश के साथ किस तरह से जूझते हैं, जैसे– बच्चे स्कूल में

हैं लेकिन वह वहां रुकना नहीं चाहते तो वह – 'क्लास बंक' करते हैं, स्कूल से भाग जाते हैं, स्कूल शुरु होने के समय वहां रहना और फिर स्कूल बंक करना तथा छुट्टी के बाद वापस स्कूल में आ जाना आदि। इन घटनाओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

''नहीं, हमारे स्कूल में तो खेलने नहीं देते हैं, तो हम तो 'गोली' करते हैं। बच्चे पिरीयड भी गोल (भाग) करते हैं।''

''फिर बच्चे फिर.......हमारे क्लास में न एक लड़का है, जब सर जी नहीं पढ़ाते न तो वह घर भाग जाता है।''

''बैग ले जाएँगे अलमारी के पीछे रख देंगें और छोटा सा गेट नहीं लगा है ना ... जहाँ बुड्ढा बैठता है, वहां से भागते हैं। छुट्टी के टाइम वापिस आ जाते हैं''।

''चौकीदार को पैसे देते हैं और भाग जाते हैं।''

''हाँ! और चौकीदार को पांच रुपये भी देंगे, पेटीज खिला देते हैं तो कहता है कि बेटा जाओ।''

''खाने की गाडी आएगी गेट खोलेंगे फटाफट और भाग जाएँगे।''

''शौच का बहाना लगाकर भाग जाते हैं।''

'सर जी! गाँव जाना है, कहके आते हैं, घर''

बच्चे स्कूल को अपने अनुसार कैसे बनाते हैं– चूँकि बच्चे स्कूल जाना पसंद नहीं करते हैं परन्तु फिर भी उन्हें स्कूल जाना पड़ता हैं ऐसे में यह बच्चे किन्ही ऐसे तरीको का प्रयोग करते हैं जो इन्हें अपनी उर्जा का संचरण करने में सहायक होते हैं। दूसरा यह अपने लिए ऐसे मकेंनिज्म बना लेते हैं, जो इन्हें स्कूल को अपने अनुसार बनाने में मदद करते हैं । इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

शिक्षक व बच्चों के नाम की लेबलिंग करना – 'मेरी क्लास में न एक लड़का है 'पागल' और एक है 'गुंडा' एक है 'ठंडीमुर्गी।''

'मेरी क्लास में एक मास्टर हैं बच्चों से खाना मांग के खाते हैं वह है न 'चिटोरा' है।''

बच्चे अपने बैग में खेलने की सामग्री लेकर आते हैं– ''हम्म ... हाँ! डंडा भी लाते हैं दुपगा (छिपाकर) – दुपगा के बैग में।''

''हाँ! और गिल्ली भी।''

स्कूल से भागने के बाद क्या - बच्चे जब स्कूल में नहीं रुकते हैं तो वह स्कूल से भागते हैं, और स्कूल से भागने के बाद वह सड़क पर अलग-अलग जगहों पर घूमते हैं। वीडियो गेम खेलने आ जाते हैं और वह घर वापस चले जाते हैं।

''बच्चे सड़क पर घूमते हैं।''

''आलोक पुंज के पास जो 'पारक' (पार्क) है ना? वहां खेलते हैं गिल्ली-डंडा''

''मैं तो गेम खेल लेता हूँ।''

''जब है ना? पापा घर पर नहीं होते हैं ना तो घर पर आ जाते हैं।''

स्कूल न होने की स्थिति में – जब बच्चे से यह बात की गई की 'अगर स्कूल हो ही ना...! तो? इस पर उनकी प्रतिक्रिया इस प्रकार थी–

''हनं ...! ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता !''

अगर ऐसा हो तो??

''तो खेल सकते हैं खूब सारा''

''क्या ऐसा हो सकता है की स्कूल को तोड़ दिया जाये???''

क्यों?

''तो स्कूल को तोड़ कर 'पारक' (पार्क) बना सकते हैं खेल सकते हैं बैत-गेंद! नहीं ''पिलोट' बना दिया जाये, तो उसमें गिल्ली डंडा खेल सकते हैं।''

इस प्रकार बच्चे स्कूल न होने की स्थिति में स्वयं के लिए खेलने की बहुत सारी आजादी और अवसरों के रूप में देखते हैं।

निष्कर्ष

इस अध्ययन द्वारा यह बात उजागर हुई कि जो बच्चे स्कूल जाना पसंद नहीं करते हैं उसके पीछे कई ऐसे कारण हैं जो स्कूल से उनकी अरुचि के परिणामों के रूप में सामने आते हैं, जैसे कि इस साक्षात्कार से कई ऐसी महत्वपूर्ण बातें सामने आईं (भाषा सही नहीं लग रही) जिसमें व्यवस्था से लेकर शिक्षकों का व्यवहार, बड़े छात्रों का डर, प्रिंसिपल व शिक्षकों का बच्चों के प्रति हिंसात्मक व्यवहार आदि शामिल हैं, जिसकी वजह से यह बच्चे खुद को स्कूल के माहौल में रहने के लिए तैयार नहीं कर पाते । न ही

स्कूल इनके लिए खुशी महसूस करते हुए सीखने का स्थान है। इन सभी वजहों से शिक्षकों और बच्चों के बीच एक बड़ा अन्तराल दिखता है। विद्यार्थी एक सहज व मित्रतापूर्ण व्यवहार की कमी के चलते शिक्षकों व अपने से बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थियों के साथ एक स्वस्थ रिश्ता कायम नहीं कर पाते और उनके प्रति अविश्वास महसूस करते हैं। बच्चे मारने-पीटने वाले शिक्षकों के नाम की लेबलिंग करते हैं और कोड शब्दों का इस्तेमाल करके अपने मित्रों में उन्हें संबोधित करते हैं जैसे कि बिहारी सर, खरगोश सर आदि।

साथ ही स्कूल में होने वाली शारीरिक और मानसिक हिंसा स्कूल के प्रति बच्चों के मन में भय पैदा करती है, इस बात के संदर्भ को यदि यहाँ समझने का प्रयास करें तो पाएँगे कि बच्चे स्कूल जाना पसंद नहीं करते हैं क्योकि उन्हें डर रहता है की स्कूल में पढ़ने वाले बड़ी कक्षाओं के छात्र व पढ़ाने वाले शिक्षक उन्हें मारते हैं, पीटते हैं। स्कूल के भीतर प्रत्येक स्तर पर की जाने वाली इस हिंसा का स्रोत क्या है? इसका एक संभावित जवाब यह है कि स्कूल एक ऐसी जगह है जहाँ न बच्चों की अपनी रुचियों को स्थान मिलता है न ही उनकी इच्छाओं को। बच्चे स्वभाव से बहुत ही उर्जावान होते हैं। बच्चे प्राय: इस उर्जा का संचरण खेल जैसे रचनात्मक माध्यमों द्वारा करते हैं और स्कूल एक ऐसी जगह होती है जहाँ उनकी इस रचनाशीलता को स्वीकारा जाना चाहिए परन्तु स्कूल में इसके विपरीत परिस्थितियां हैं जहाँ बच्चों को खेलने की स्वतंत्रता नहीं है। उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे घंटों-घंटों निष्क्रिय रूप से चुपचाप एक बंद चार दिवारी में बैठे रहें। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो उन्हें मारा जाता है, उनके साथ हिंसात्मक व्यवहार किया जाता है और यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। सालों साल, जिसका एक परिणाम स्कूल में बड़ी कक्षाओं के वे हिंसात्मक छात्र हैं जो छोटी कक्षाओं के छोटे बच्चों पर हिंसा करते हैं, जैसे की सिंग्मन फ्रायड ने भी कहा है कि 'मनुष्य में तमाम तरह की ऊर्जा यौनिक उर्जा है' [libido] जिसका संचरण ही व्यक्ति के अलग-अलग व्यवहारों में प्रतिबिंबित होता है। स्कूल के छात्रों में पाया जाने वाला हिंसात्मक व्यवहार इसी ऊर्जा के दमन का विस्फोटक रूप है। इस विस्फोटक स्थिति को व्यवस्थित किया जा सकता है यदि बच्चों में व्याप्त इस उर्जा का संचरण अलग-अलग तरह की रचनात्मक खेल गतिविधियों के माध्यमों से किया जाये।

इसी प्रकार शिक्षकों में व्याप्त हिंसा भी कहीं न कहीं शिक्षकों की उन कुंठाओं का प्रतिबिम्बन है जिनका एक औपनिवेशिक इतिहास रहा है। इस संदर्भ में प्रो. कृष्ण कुमार

का लेख 'शिक्षक एक दब्बू तानाशाह' सटीक व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह लेख बताता है कि कैसे सरकार के कर्मचारी के रूप में शिक्षक, व्यवस्था में विद्यमान सत्ता के विभिन्न स्तरों में अधिकारियों के अधीन हैं। ज्ञान के चयन व हस्तांतरण में उसकी स्वयं की कोई सक्रिय भूमिका नहीं होती हैं। तमाम तरह के प्रशासनिक कार्यों के साथ कक्षा में पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम को निर्धारित समय में पूरा करना ही उसका ध्येय है। उसकी स्वयं की कोई सत्ता नहीं है। बस एक ही जगह उसकी सत्ता है वह है कक्षा। कक्षा में उसके ज्ञान व सत्ता को कोई चुनौती नहीं दे सकता। इस लघु शोध में भी इस तरह के विवरण हैं जो शिक्षक के व्यवहार की उस उपनिवेशिक छवि को दर्शाते हैं।

स्कूल में बुनियादी सुविधाओं जैसे पानी, शौचालय, बैठने की व्यवस्था का न होना बच्चें के लिए स्कूल को अनाकर्षक बना देता है। बच्चों को पीने का पानी भी खरीद कर पीना पड़ता है, यहाँ प्रश्न यह भी है कि कितने माँ-बाप बच्चों को रोज पानी खरीदने के पैसे दें पाते होंगे। क्या यह इन माता-पिता पर एक अतिरिक्त भार नहीं है? स्कूल के इस तरह के माहौल में जहाँ बच्चों के साथ प्रत्येक स्तर पर हिंसात्मक व्यवहार होता है और बच्चों को खेलने की स्वतंत्रता नहीं है व स्कूल में रुचिकर तरीके से पढ़ने-लिखने का माहौल नहीं हैं। ऐसे में बच्चों में निहित उर्जा का संचरण किस प्रकार हो? जिस तरह के परिवेश में बच्चे लगातार हिंसा को ही देख रहे हैं ऐसे में उनकी यह निहित उर्जा संचरण के लिए नकारात्मक और हिंसात्मक गतिविधियों को ही माध्यम बनाती है। नियत परिस्थितयों में बच्चे विकल्प तलाशते हैं और इन विकल्पों में कभी स्कूल से भाग जाना, किसी पीरियड को गोल करना, बहाना लगा कर घर भाग जाना, छुट्टी लेकर घर चले जाना, बैग में खेलने की चीजें छिपा कर लेकर आना आदि-आदि शामिल है।

एक सबसे महत्वपूर्ण और चौका देने वाली बात यह सामने आई वह यह कि बच्चों की अपनी एक दुनिया होती है जहाँ उनकी कल्पनाएँ फैलती हैं, बाह्य दुनिया का स्वरूप उसे कभी भी अपनी दुनिया जैसा नहीं लगता और इस स्थिति में जब उससे पूछा जाता है कि अगर 'स्कूल हो ही न' तो? उसका जवाब होता है, ''पूरा स्कूल तोड़ दो पिलोट समतल मैदान, बना दो जहाँ क्रिकेट और गिल्ली डंडा खेल सकें।'' बच्चे अपने भीतर एक ऐसे उग्रवादी विचार को जन्म दे रहे हैं कि स्कूल को पूर्णत: खत्म ही कर दिया जाए! जैसे की जॉन होल्ट अपने लेख 'असफल स्कूल' के विश्लेषण में चर्चा करते हुए कहते हैं कि– स्कूल कैसे बच्चों में बुरी रणनीतियां पनपाते हैं, उनमें डर जगाते हैं और ऐसे ज्ञान को पैदा करते हैं जो खंडित, विकृत और अल्पकालिक तो होता ही है,

साथ ही उनकी वास्तविक जरूरतों की पूर्ति तक नहीं कर पाता। स्कूल के परिवेश में होने वाली हिंसा और शिक्षकों द्वारा किये जाने वाला नकारात्मक व्यवहार बच्चों में एक प्रकार की नकारात्मक अभिरुचि पैदा करता है।

स्कूल एक सामाजिक संस्था और समाजीकरण की प्रमुख एजेंसी के रूप में बच्चों की अस्मिता निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि पहचान निर्माण की प्रक्रिया समाज व उसकी संस्थाओं तथा व्यक्तियों के बीच चलने वाली एक द्वंदात्मक (dailactic) प्रक्रिया है (लक्मन और बर्जर, 1966 य 194) इस तरह स्कूल में चलने वाली हिंसात्मक प्रक्रिया बच्चों के अस्मिता निर्माण में एक ऐसी अभिरुचि और रवाया पैदा करती है जो बच्चों के व्यवहार को असामाजिकता (anti-social) की दिशा में ले जाती है।

अंत में एक प्रश्न जो बार-बार मन में उठता है कि क्या स्कूली व्यवस्था की ये खामियां सोची समझी साजिश तो नहीं? जो इन बच्चों को यहीं तक सीमित रखकर एक पूंजीवादी व्यवस्था को मजदूर प्रदान कर सकने के लिए काम कर रही है।

जब बच्चा खुद को इस व्यवस्था में दमित होता पाता है तो क्या दमन की भावनाएँ उसे स्कूल के प्रति अत्यधिक उग्रवादी सोच की ओर अग्रसर कर देती हैं? स्कूल को नष्ट कर डालने की ओर अग्रसर कर देती हैं? इस पूरे परिदृश्य में व्यवस्था को जिम्मेदारी लेने की आवश्यकता है कि वह किस तरह के 'लोकतंत्र' व 'सामाजिक कल्याण' को विकसित कर रही है। क्या केवल नीतिगत स्तर पर यह सुनिश्चित कर देना कि स्कूल में बच्चों की संख्या बढ़े और प्रत्येक बच्चे को शिक्षा मिले, कह देना ही काफी है? 'या फिर इस विषय पर गहराइयों से यह भी सोचने की जरूरत है कि उस शिक्षा का स्वरूप कैसा होगा जो इन सभी बच्चों को दी जा रही है'? शिक्षा के इस सारभौमिक स्वरूप को बच्चों के लिए उपलब्ध करने वाला स्कूल कैसा होगा? और जैसा सोचा जा रहा है क्या वाकई स्कूल की भीतरी संरचनाओं में ऐसी बुनावट है? स्कूल को नष्ट कर डालने की बात बच्चों की मनोदशा को प्रकट करते हुए इस बात का भी साक्ष्य है की बुनावट में भीतर ही भीतर कई तरह की खामियां हैं जो कि गहन चिंतन की मांग करती है।

प्रस्तुत शोध से जुड़े हमारे अनुभव

इस पूरे शोध से जुड़े अनुभवों पर यदि कोई टिप्पणी करें तो वह यह कि हम दोनों शोधार्थी के लिए यह कार्य अत्यंत ही मनोरंजन से भरा था। मनोरंजन जिसमें बहुत-सी

सीख शामिल रही। शोधार्थी के लिए साक्षात्कार को एक टूल की तरह प्रयोग कर आंकड़े एकत्रित करने का यह पहला अनुभव था और बच्चों के साथ साक्षात्कार करने का भी पहला अनुभव था। इसलिए शोध के शुरुआती समय में हमें कई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा। जैसे साक्षात्कार के लिए प्रश्नों का निर्माण करना, आंकड़ों के संकलन के लिए प्रतिदर्श सैंपल, का चयन किस तरह करें आदि-आदि। क्योंकि हमारे शोध का विषय एक ऐसा विषय है जो स्कूल जाने वाले प्रत्येक विद्यार्थी ने संभवतः कभी न कभी महसूस किया होगा। 'स्कूल जाना न पसंद करना'। ऐसे में हमारे लिए यह एक चुनौती भी रही क्योंकि एक ऐसे बच्चे को तलाशना जो अपने पूरे स्कूल के दौरान लगातार स्कूल से बचने की कोशिश करता/करती रही है। जब हमने एक ऐसे बच्चे की पहचान की जो स्कूल से लगातार भागने की कोशिश करता रहता है। तो उसके साथ अंत्सम्पर्क बनाना और इस तरह की 'रेपो' बनाना जिससे कि उचित, सटीक और सच्ची जानकारी मिल पाए। यह कौशल स्वयं में ला पाने की कोशिश में यह शोध प्रक्रिया व पठित संबंधित साहित्य बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक बड़े और दुरुह क्षेत्र में आने के लिए जहाँ शोध की प्रक्रिया को जानना, समझना और उसकी चुनौतियों से मुखातिर होने के लिए इस लघु शोध ने समय सीमा के भीतर बहुत ही सघन अवसर प्रदान किए। समय सीमाओं के भीतर इस लघु शोध की भी कई सीमाएं रही हैं। अंत में यही कहना चाहेंगे कि इस कार्य के दौरान हमने व्यक्तिगत रूप से अपने समूह के लोगों को भी समझा। जीवन की जटिलताओं से जूझते ये सभी शोधार्थी किस प्रकार अपने निजी जीवन की कठिनाइयों को दरकिनार कर इस कार्य के लिए प्रस्तुत रहे और जब-जब यह सम्भव नहीं हुआ तो उसका असर कई मायनों में इस कार्य पर पड़ा। इस तरह के प्रभावों से इस शोध को बचाने और इसे पूरी सम्पूर्णता से करने के द्वंद्वात्मक अनुभव बहुत अर्थपूर्ण रहे।

गहन साक्षात्कार एक शोध उपकरण के रूप में इस्तेमाल करने के अनुभव

साक्षात्कार लेने से पहले काफी तैयारी करने के बावजूद जब बच्चे का साक्षात्कार लेना शुरु किया गया तब पता चला कि कई बार प्रश्नों के उत्तर जब 'मुझे नहीं पता' जैसे आते थे तो अगला प्रश्न क्या हो यह तुरंत सोचना एक चुनौती हो जाती थी। सबसे कठिन और महत्वपूर्ण काम था बच्चे की स्वभाविकता से जवाब देने की प्रक्रिया को बनाए रखना और उसके विश्वास को जीतना। एक बड़ी बच्ची के साक्षात्कार में और एक छोटे

बच्चे के साक्षात्कार में जो मुख्य अंतर पाया गया वो था– छोटे बच्चे का साक्षात्कार काफी स्वाभाविक, रोचक और विषय की गहराई तक ले जाने की क्षमता रखता था इसलिए यह चुनौतीपूर्ण भी रहा जिसमे बहुत ज्यादा कौशल की जरूरत थी। जबकि बड़ी बच्ची ने अपनी बातें काफी व्यवस्थित ढंग से रखीं और वह अपनी बातों के प्रति सहज भी दिखी। बड़ी बच्ची से सूचनाएं प्राप्त करना अपेक्षाकृत कठिन लगा क्योंकि एक बात बोलने के बाद वह कई बार उसकी व्याख्या करती थी। इस कोशिश में ऐसा प्रतीत हुआ कि वह खुद को घटनाओं से थोड़ा अलग रखने की कोशिश कर रही है।

सुझाव : साक्षात्कार लेने से पहले वार्ता के कुछ मुख्य बिंदु अवश्य सोच लिए जाएँ खास कर गहन साक्षात्कार के संदर्भ में यह कारगार साबित हुआ।

कुछ प्रश्न पहले से सोचे जा सकते हैं और बाकी वार्ता के दौरान बातचीत से निकालने होते हैं जिसके लिए काफी सचेत रहकर सुनने की जरूरत होती है। एक बार की बातचीत के बाद जिन मुद्दों या बिंदुओं पर बात करना रह गया हो या जो नए विचार पहले साक्षात्कार से मिले हों उन्हें डायरी में नोट कर लें और समय निकाल कर उन पर भी बात करना, विषय की गहरी और स्पष्ट समझ बनाने के लिए जरूरी है। यदि साक्षात्कार बच्चे से लिया जा रहा है तो बच्चे की बातों को साथ-साथ ही 'क्रास-चेक' करना भी जरुरी है। क्योंकि कई बार बच्चे पहले से अलग कोई बात बोलने लगते हैं तब उसका कारण तभी जाना जा सकता है जब आपने पहले की बात ध्यान से सुनी हो। ऐसे में बच्चों से जांच-पड़ताल और गहरी जानकारी लेना एक उचित कदम हो सकता है।

नैतिक मुद्दे : बच्चे का साक्षात्कार लेते वक़्त Elliot W. Eisner के लेख ethical tensions, controversies, and dilemmas in qualitative research में उठाये गए कई मुद्दे बहुत प्रासंगिक लगे, जैसे- साक्षात्कार लेने से पहले सहभागी को साक्षात्कार के विषय में सूचित करना कि यह साक्षात्कार क्यों लिया जा रहा है, इसका आगे क्या प्रयोग किया जायेगा आदि-आदि। इसलिए बच्चे को बताया गया था कि उसका साक्षात्कार क्यों लिया जा रहा है। लेकिन यहाँ यह भी एक प्रश्न है कि क्या बच्चे के पास यह स्वतंत्रता थी कि वह हमसे भी प्रश्न कर सके या उसने जो बातें हमसे साझा की होंगी वह इस सूचित सहमति से कितनी प्रभावित हुई होंगी। क्या वह समझ पाएगा कि उसके द्वारा दी गई जानकारी का किस प्रकार इस्तेमाल किया जाएगा।

संदर्भ

इलिच; इवॉन (1983) *डिस्कूलिंग सोसायटी,* न्यूयार्क, हॉर्पर कॉलोफोन

'*माई स्कूल*' (1993) लैक्चर डेलिवर्ड इन अमेरिकन पब्लिस्ड इन पर्सनालिटी लन्दनः मैकमिलन

होल्ट; जॉन (1993). *बच्चे असफल कैसे होते हैं,* एकलव्य, भोपाल

खतराः स्कूल! (2006) संपादक; अरविन्द गुप्ता, भारत ज्ञान विज्ञान समिति, नई दिल्ली

पर्सनालिटी थियोरीज (1992) बाई लॉरी ए. ज़ेले, डेनियल जैगलर, मैकगोहिल एजुकेशनः यूरोप, न्यूयार्क, युनाइटेड स्टेट

रिच; जॉन (1968) *इंटरव्यूइंग चिल्ड्रेन एंड एडोलेसेंट,* मैकमिलन

ईशनर; डब्लयू. इलियट (1998) द *इन्लाटन्ड आई,* प्रेंटिस हॉल, यू.एस.ए.

पीटर एल. बर्गर; थामस लैकमेन (1966), द *सोशियल कन्स्ट्रक्शन ऑफ रियलिटी,* यूएस

कुमार कृष्ण (1998), *शैक्षिक ज्ञान का वर्चस्व,* ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 24, अंक 2, अगस्त, 2017

चिंतक और चिंतन

आचार्य विनोबा भावे के दर्शन में निहित शान्ति शिक्षा

शैलजा मिश्रा*

पुष्प की सुगंध वायु के विपरीत कभी भी नहीं जाती लेकिन मानव के सद्‌गुण की महक सब ओर फैल जाती है। आचार्य विनोबा भावे एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जिसकी यशगंध संसृति में फैली है। विनोबा ने अपने व्यक्तित्व के सद्‌गुणों से बिना किसी भेदभाव के समस्त मानव जाति को सुबासित किया है जिसके लिये मानव जाति आज भी उनकी ऋणी है। आचार्य विनोबा भावे का जीवन दर्शन कर्म आधारित रहा है, इन्होंने सदा कर्म की आराधना की तथा वे कर्मयोगी कहलाये। वे मानते थे कि व्यक्ति का जीवन उसकी इच्छा, कर्म व विचारों की त्रिवेणी से प्रभावित होता है। व्यक्ति को उत्तम पुरुष की श्रेणी में स्थापित होने के लिए इन तीनों अर्थात् इच्छा, कर्म एवं विचारों में सद्‌गति होना तथा इन तीनों के मध्य एकात्मकता का होना परम आवश्यक है और आचार्य विनोबा भावे ने अपने को उन विरले व्यक्तियों में स्वयं को सम्मिलित किया जिनमें इस दुर्लभ एकात्मकता का दर्शन होता है उनके कर्म में उनकी इच्छाशक्ति एवं विचारशक्ति स्पष्ट देखी जा सकती थी।

आचार्य विनोबा जी का जन्म 11 सितम्बर 1895 को गागोद गाँव (पेण तहसील, जिला रामगढ़, महाराष्ट्र) में हुआ था। इनके बचपन का नाम विनायक नरहरि भावे था। किन्तु समस्त भारतवर्ष में यह सन्त विनोबा या आचार्य विनोबा भावे के रूप में विख्यात हुए। इनके पिता का नाम शम्भूराव भावे तथा माता का नाम रुक्मिणी देवी था। ये चार भाई तथा एक बहन थे, जिनके नाम क्रमशः विनायक, बालकृष्ण, शिवाजी, दत्तासेन तथा शान्ता बहन थे। विनोबा जी के व्यक्तित्व पर उनके पिता शम्भूराव भावे एवं माता

* सहायक उपाचार्य, शिक्षक-शिक्षा विभाग, एस.एस. (पी.जी.) कॉलेज, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश

रुक्मिणी देवी का विशेष प्रभाव था। ईश्वर के प्रति आस्था एवं भक्ति का प्रसाद उन्हें अपने पिता एवं प्रेम, क्षमा, करुणा, सहयोग, सौहार्द, कर्मनिष्ठा का आशीर्वाद उन्हें अपनी माता से संस्कारों के रूप में मिला था।

आचार्य विनोबा कहते थे– ''दूसरों को देने का आनन्द, खिलाकर फिर खाने का संस्कार मुझे मेरी माँ से प्राप्त हुआ।''

विनोबा जी की नियमित विद्यालयी शिक्षा 1903 में बड़ौदा के एक प्राथमिक विद्यालय में कक्षा 3 से हुई। वे अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं मेधावी छात्र थे तथा इसके साथ ही वे अत्यन्त विनीत, आदर्श एवं चरित्रवान छात्र के रूप में पहचाने जाते थे। गणित एवं दर्शन उनके प्रिय विषय थे। गणित के विषय में इन्होंने लिखा था ''ईश्वर के बाद यदि मैं किसी वस्तु से प्यार करता हूँ तो वह गणित है। गणित के लिए मेरी इतनी उत्कण्ठा थी कि मैं तो सवाल हल करने में लगा रहता था और पास में घण्टों मेरा भोजन पड़ा रहता था। गणित में मेरी अद्‌भुत प्रतिभा थी, ऐसे कठिन प्रश्नों को भी मैं आसानी से हल कर लेता था, जिनको हल करने में मेरे अध्यापक भी असफल रहते थे।''

आचार्य विनोबा जी के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन गाँधी जी के संसर्ग में आने के पश्चात् हुआ। महात्मा गाँधी से उनकी प्रथम भेंट 4 जून 1916 को हुई थी। उस समय गाँधी जी सब्जी काट रहे थे, उन्होंने विनोबा जी से भी सब्जी काटने का आग्रह किया। इस प्रकार विनोबा जी को कर्मयोग की प्रथम दीक्षा प्राप्त हुईं।

विनोबा जी का सारा जीवन एक साधना का जीवन था। उनकी रुचि न तो भाषण देने में थी और न राजनीति में, वे तो केवल गरीबी, अशिक्षा, ऊँच-नीच के भेद को मिटाने और रचनात्मक कार्यों को करते रहना चाहते थे और वे इन्हीं में रत् रहते थे। उन्होंने महात्मा गाँधी का सत्याग्रह आन्दोलन में भरपूर साथ दिया। 17 अक्टूबर 1940 को गाँधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए विनोबा जी को प्रथम सत्याग्राही घोषित किया। इस सत्याग्रह के लिए उन्हें तीन बार कारावास भी हुआ। वे भारत छोड़ो आन्दोलन के सिलसिले में जेल भी गये थे। 15 अगस्त को देश आजाद होते ही वे बंगाल में दीन-दुखियों के कष्ट का निवारण करने निकल पड़े।

आचार्य विनोबा ने सत्याग्रह पर विश्वास रखते हुए सर्वोदय समाज की स्थापना की। 7 मार्च 1951 को उन्होंने अपनी पैदल यात्रा के दौरान ''भूदान आन्दोलन'' का सूत्रपात किया और इसी सिलसिले में 13 अप्रैल 1951 को नरगौड़ा के पोचमपल्ली गाँव में जमींदार रामचन्द्र रेड्डी ने 100 एकड़ जमीन देकर विनोबा जी के भूदान यज्ञ में प्रथम

आहूति डाली। इस प्रकार आचार्य विनोबा जी ने भूदान आन्दोलन के लिए कई क्षेत्रों की पदयात्रा की।

सन् 1960 में आचार्य विनोबा जी ने अपनी बौद्धिक कुशलता से डाकुओं का आत्मसमर्पण करवाया। सन् 1974 को अखिल भारतीय स्त्री सम्मेलन में भाग लेते हुए स्त्री शक्ति के महत्व का लोगों को ज्ञान करवाया। 25 दिसम्बर 1974 को उन्होंने मौन व्रत धारण किया, साथ ही गोवध के विरोध में अपना अनशन शुरू किया। इस अनशन के दौरान उनकी हालत बिगड़ते देख मोरारजी देसाई ने पशु संबर्द्धन को संविधान की केंद्रीय सूची में डाला।

आचार्य विनोबा गाँधी जी के सच्चे अनुयायी थे, उन्होंने जीवन भर मद्य निषेध तथा सामाजिक बुराईयों तथा भूदान आन्दोलन के लिए निरन्तर संघर्ष किया। 15 नवम्बर 1982 पवनार आश्रम में रहते हुए अपना शरीर त्याग दिया। विनोबा जी को 1958 में प्रतिष्ठित रैमन मैग्सेसे पुरुस्कार तथा 1983 में भारत रत्न से सम्मानित किया गया। उन्होंने अपने जीवन में ''मैत्री'' तथा ''महाराष्ट्र धर्म'' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया।

ऊँ सहनाववतु सह नौभुनक्तु सहवीर्यं कर्वावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।
ऊँ शांतिः शांतिः शांतिः।।

उपनिषद में निहित उपर्युक्त श्लोक में शांति की एक दिव्य भावना अन्तर्निहित है। उक्त श्लोक के अनुसार हमारे ऋषिओं ने कामना की कि हम एक दूसरे की रक्षा करें, एक साथ आनन्द से रहें, अपनी अन्तर्शक्ति को साझा करें, हमारे अध्ययन की चमक दूर तक फैले, हमारे बीच कोई द्वेष, वैरभाव न हो, हम शांति से एक साथ रहें। शांति शब्द आकारिक दृष्टि से सूक्ष्म होने पर भी महत्व की दृष्टि से इतना विस्तृत है कि सम्पूर्ण विश्व का अस्तित्व इसी पर निर्भर है। प्रत्येक कार्य चाहे वह छोटा हो या बड़ा, इसके संपादन हेतु शांति की भूमिका सर्वप्रमुख है। सर्वशक्ति संपन्न होते हुए भी व्यक्ति सुखी नहीं रह पाता तो इसके मूल में शांति का अभाव ही दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार यदि विचार किया जाये तो स्पष्ट होता है कि शांति हमारे जीवन की आवश्यकता है। यह एक ऐसा परमतत्व है जिसके अभाव में जीवन की कल्पना भयभीत करती है। इस सृष्टि के विकास के मूल में शांति है। यदि शांति का तत्व हमारे बीच न होता तो हम इतनी लम्बी विकास यात्रा न कर पाते। इस विकास पथ पर अग्रसर बने रहने हेतु यह आवश्यक है कि इस परम तत्व तक हम सबकी पहुँच हो हम सभी कदम ताल मिलाकर चल सकें।

मानव की विजय यात्रा में यदि उसके शरीर बल के साथ उसका बुद्धिबल न जुड़ा होता तो वह अपनी विजयपताका कदापि नहीं फहरा पाता। किन्तु इस विश्व में मानव के अस्तित्व के बने रहने के लिए केवल शरीरबल एवं बुद्धिबल ही पर्याप्त नहीं था बल्कि इसके साथ-साथ नीतिबल और सामाजिक मर्यादा भी मानव सभ्यता का आधार बनी थी। सामाजिक और नैतिक जीवन मानव सभ्यता का अभिन्न अंग है जो कि वातावरण, शिक्षा एवं संस्कार द्वारा पालित पोषित होता है। संस्कारों से घुली मिली शिक्षा जो हमारे जीवन में शांति का बीज रोप सकती है वही शांति शिक्षा कहलाती है वही जो हमें सद्भाव, प्रेम, सहिष्णुता का पाठ पढ़ाये और हमारे अन्दर सामाजिकता का विकास करे। प्रेम, सहनशीलता, करूणा, क्षमा ये सारे मूल्य मिलकर शांति तत्व की स्थापना करते हैं और व्यक्ति के अन्दर इन सारे मूल्यों का विकास करने वाली शिक्षा शांति शिक्षा का ही रूप होती है। हम भाग्यशाली हैं कि हमने भारत जैसे देश में जन्म लिया है जहाँ हमें विभिन्न धर्मों, भाषाओं, संगीत और विविध प्रकार के भोजन के अनुभव का अवसर बहुत सुगमता से मिल जाता है जिससे मस्तिष्क की व्यापकता बढ़ती है तथा संकीर्णता घटती है। यहीं से शांति की नींव पड़ जाती है और इस नींव को पुख्ता बनाने के लिए आवश्यक है कि हम अपने बच्चों को सामान्य विद्यालयों में भेजें न कि किसी सम्प्रदाय विशेष, वर्ग विशेष, या फिर बालकों की विशिष्टता के आधार पर। सामान्य विद्यालयों में रहकर ही हमारे बच्चे आपस में भाईचारा, प्रेम, करुणा, क्षमा, परोपकार, सहिष्णुता का पाठ नैसर्गिक रूप से सीखते हैं, यही शांति शिक्षा का आधार है।

आचार्य विनोबा जी के द्वारा दी गई शांति शिक्षा का लक्ष्य विश्व में शांति स्थापित करना है। आचार्य विनोबा महात्मा गाँधी के सच्चे अनुयायी थे, अत: उन्होंने गाँधी जी के समान सत्य, अहिंसा, प्रेम, अपरिग्रह, मानव सेवा आदि को अपना जीवन मूल्य बनाया। उनके अनुसार आत्मज्ञान और विज्ञान के संयोग से सामूहिक अहिंसा का जन्म हुआ है। इसको वे गाँधी ज्ञान कहते थे। उनका मानना था कि जिस प्रकार हाईड्रोजन और ऑक्सीजन मिलकर पानी बनता है ठीक वैसे ही आत्मज्ञान और विज्ञान मिलकर ''सर्वोदय'' या ''साम्ययोग'' बनता है और इसी में सम्पूर्ण विश्व का हित निहित है।

आचार्य विनोबा जी ने ब्रह्मविद्या मन्दिर की स्थापना की। उनका मानना था कि ब्रह्मविद्या (आध्यात्मिक विज्ञान) के आधार पर समाज की भव्य इमारत बनाई जा सकेगी, जिससे मानव-मानव के बीच में किसी भी प्रकार की शारीरिक, मानसिक दीवारें नहीं होंगी और प्रत्येक को उसके सामर्थ्य और बुद्धिबल के अनुसार विकास का

समान अवसर दिया जायेगा। इसी में विश्व शांति का मूल है, और इसी आधार पर बालक को शिक्षित करना, उसको पुष्पित पल्लवित होने के अवसर देने से ही विश्व शांति के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

आचार्य विनोबा जी का मानना था कि विश्व में शांति की संकल्पना की पूर्ति हेतु शांति शिक्षा एक अनिवार्य साधन है, इस साधन हेतु उन्होंने 11 व्रतों को आदर्श के रूप में सम्मिलित करने का सुझाव दिया। आचार्य द्वारा दिये गये 11 व्रत निम्नलिखित प्रकार से हैं:

''अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य, असंग्रह।
शरीर, श्रम, अस्वाद, सर्वत्र, भयवर्जन
सर्वधर्मी समानत्व, स्वदेशी स्पर्श भावना
ही एकादशा सेवावीं नम्रत्वे व्रत निश्चये।।''

आचार्य विनोबा की मानें तो शांति शिक्षा नैतिक शिक्षा के पथ पर चलकर ही प्रदान की जा सकती है और नैतिक शिक्षा आध्यात्मिक साहित्य के आश्रय से ही बालकों तक पहुँचाई जा सकती है। उनका मानना था कि विश्व में शांति तब तक स्थापित नहीं की जा सकती है जब तक मनुष्य का मन शान्त न हो और मन को शान्त करने में आध्यात्मिक साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

उनके अनुसार शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों को सभी धर्मों का सार सिखाया जाये। वे कहते थे ''धार्मिक शिक्षण दिलचस्प विषय है, पर आज 'धर्म' शब्द का अर्थ बड़ा ही संकुचित और समाजभंजक बन गया है। यही कारण है कि विचारशील लोगों का सुझाव पाठशालाओं में धर्म शिक्षण न देने के पक्ष में है। मेरी दृष्टि से सच्चा धर्म शिक्षण साहित्य का विषय ही नहीं है, चरित्र-निष्ठा, ईश्वर विषयक श्रद्धा और देह से पृथक आत्मा का भाव, यही धर्म का सार है।'' शांति शिक्षा के संबंध में वे स्वीकार करते थे कि शिक्षा में धर्मों का प्रवेश हो। इस दृष्टि से उन्होंने सिफारिश भी की थी कि सभी शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों को सब धर्मों का सार सिखाया जाये। उनके अनुसार सेक्युलॉरिज्म का अर्थ धर्म-निरपेक्षता नहीं है, वास्तव में ''सब धर्मों के लिये समान भाव'' ऐसा उसका भावात्मक अर्थ किया जाना चाहिए। वे मानते थे कि शांति शिक्षा बालक को संस्कारी बनाती है और यदि शिक्षा के क्षेत्र से सब धर्मों को हटा देंगे तो बालक संस्कारी कैसे बनेगा?

आचार्य विनोबा शांति शिक्षा के लिए मानते थे कि बालकों को सुन्दर कहानियां सुनाने से उनमें आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा उत्पन्न होती है जो समस्त लोक में शांति स्थापित करने में पूर्णत: सक्षम है। वे कहते थे कि ऐसे में सर्वप्रथम सवाल आता है कि वे कहानियाँ कौन सी होंगी जो बालकों के मन पर अमिट प्रभाव डाल सकें तो यहाँ पर उनका मानना था कि बालकों में अच्छे संस्कार विकसित करने वाली कोई भी कहानी चल सकती है परन्तु जो कहानियाँ प्राचीन काल से घोटी गयी हैं उनका अधिक असर होगा, होम्योपैथी की औषधि जैसा। मैं दो मिसाल देता हूँ– एक ध्रुव की कहानी और दूसरी प्रह्लाद की। ये दोनों कहानियाँ कम से कम पाँच हजार साल से घोटी गई हैं। इसलिए उनकी पोटेन्सी बढ़ी है। इस युग की कहानियाँ भी कह सकते हैं, पर प्राचीन कहानियों की शक्ति ज्यादा होगी।''

कहानियों के सन्दर्भ में वे एक महत्वपूर्ण बात और कहते थे कि बालकों को कहानियाँ सुनाते समय एक बिन्दु सहज ही ध्यान में रखना चाहिए कि जो कहानियाँ बालकों को सुनायें वे एक ही धर्म की नहीं होनी चाहिए, अनेक धर्मों की कहानियों को सुनाना चाहिए। ईसा मसीह, मुहम्मद पैगम्बर की कहानियाँ कहनी चाहिए। भिन्न-भिन्न धर्मों के साधु-सन्तों की कहानियाँ, सेण्ट फ्रॉसिस की कहानियों को सुनाना चाहिए। बच्चे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई नहीं होते, वे परमात्मा के बच्चे होते हैं। यानि कि आध्यात्मिक होते हैं, धार्मिक, पांथिक नहीं होते। हिन्दुस्तान का वैभव है कि अनेक धर्मों के लोग यहाँ हैं, इसलिए इस दृष्टि से हमारा चिन्तन होना चाहिए।'' उनके अनुसार इसी आधार पर शांति शिक्षा का विकास किया जाना चाहिए।

आचार्य विनोबा शांति शिक्षा हेतु सहयोग की भावना की सहायता लेने की भी बात कहते हैं। उनके अनुसार इस सहयोग के अन्दर सारा समाजशास्त्र, मानवशास्त्र इत्यादि आ जायेगा। वे कहते थे कि जीवन में शांति के लिए सबसे महत्वपूर्ण है सहजीवन जीने की कला आये। सहजीवन को कला इसलिए कहा गया है क्योंकि यह कोई आसान कार्य नहीं है कि कहा और हो गया बल्कि सच यह है कि यह किसी योग से कम नहीं है। हम सबको इकट्ठा जीना है। सहजीवन में अनेक भाषायें, अनेक प्रान्त इत्यादि - इत्यादि भेद सब खत्म करने होंगे। वे समझाते हुए कहते थे कि कल हमको किसी ने कहा 'हम भारतीय हैं' ऐसी भावना होनी चाहिए न कि 'हम महाराष्ट्रीय हैं, गुजराती हैं, तमिल हैं' इत्यादि-इत्यादि। मैंने कहा यह मिनिमम जरूरत है, 'हम भारतीय हैं।' यह सबसे छोटी मांग है। अधिक से अधिक भी नहीं, इष्टतम भी नहीं। यह कम से कम है। वास्तव में जरूरी है विश्वमानव – हम विश्वमानव हैं।

आचार्य इसी युक्ति को आगे समझाते हैं कि हम गाना गाते हैं, भारत के गीत, प्रान्तों के गीत। लेकिन हमारे वेद में पृथ्वी सूक्त है, भारतसूक्त नहीं। ''नाना धर्माणां प्रथिवीं विवाचसम्''- यह हमारी पृथ्वी, इसमें अनेक धर्म हैं और विवाचम् अनेक वाणियाँ, अनेक भाषायें हैं, तो अनेक भाषाओं से भरी और अनेक धर्मों से भरी है हमारी यह पृथ्वी। अतः हमको विश्वमानव बनना चाहिए, इसीलिए हमें ''जय जगत'' का उद्घोष मिला। वे कहते थे कि ''जय जगत'' से कम चीज नहीं चलेगी। लेकिन अगर कम से कम चाहिए तो हम भारतीय हैं यह ठीक है माफ है। अर्थात् आचार्य विनोबा जी के अनुसार शांति शिक्षा अपने अन्दर विश्वबन्धुत्व की भावना समाहित किये हुए है।

आचार्य विनोबा भावे शांति शिक्षा में इतिहास विषय को सम्मिलित करने की बात भी करते थे किन्तु साथ ही वे इतिहास को सम्मिलित करने में अति सावधान होने की बात भी कहते थे। वे समझाते हैं कि हमारा सारा प्राचीन इतिहास गौरवशाली ही है ऐसा नहीं है, उसमें अनेक दोष भी हैं। जिन्होंने हमारे जीवन एवं समाज पर प्रभाव डाला है उनकी जानकारी देनी चाहिए। वे ध्रुव तारे का उदाहरण देते हुए समझाते हैं कि ध्रुव नामक बालक ने तपस्या की। उस तपश्चर्या ने उस छोटे से बालक को एक सर्वोच्च स्थान पर आरूढ़ किया। वे एक और उदाहरण देते हैं कि विश्वामित्र के क्रोधित होने पर ऋषि वशिष्ठ क्रोधित नहीं हुए थे। एक बार विश्वामित्र ने ऋषि वशिष्ठ का वध करने की सोची और उन्हें मारने चल पड़े। पूर्णिमा की रात थी, ऋषि वशिष्ठ अपनी पत्नी अरुन्धती के साथ चाँदनी में बैठकर बाते कर रहे थे। ऋषि विश्वामित्र छुपकर उनकी बातें सुनने लगे।

अरुन्धती ने वशिष्ठ से कहा– चाँदनी कितनी सुहावनी है। वशिष्ठ बोले– ठीक विश्वामित्र की तपस्या जैसी, अत्यन्त मनोहर। वार्तालाप सुनते ही विश्वामित्र का क्रोध शान्त हो गया और एकदम सामने उपस्थित होकर उन्होंने वशिष्ठ को साष्टांग प्रणाम किया। वशिष्ठ विश्वामित्र को राजर्षि कहा करते थे। लेकिन विश्वामित्र के नमस्कार करने के साथ ही ऋषि वशिष्ठ ने कहा– ब्रह्मर्षे उत्तिष्ठ-ब्रह्मर्षि, उठो।

सारांश हमें ऋषि वशिष्ठ का सारा इतिहास नहीं चाहिए। शांति शिक्षा हेतु केवल इतनी ही कहानी पर्याप्त है। क्योंकि इससे नैतिक सद्गुण आयेंगे। उनके अनुसार शांति शिक्षा हेतु इतिहास के रूप में जीवन भर उपकार में रत् रहने वाले व्यक्तियों के विषय में बताया जाना चाहिए, जो बालकों में प्रेम, करुणा, दया, परोपकार आदि नैतिक भावनाओं का विकास कर पायेंगे, क्योंकि यही मूल्य शांति शिक्षा के महत्वपूर्ण घटक हैं।

आचार्य विनोबा जी का कहना था कि शांति शिक्षा में ब्रह्म शिक्षा को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। ब्रह्म-शिक्षा से आत्मा का ज्ञान होता है। बालक शरीर, मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण करना सीख सकेगा। सम्पूर्ण विश्व के प्रति प्रेम उत्पन्न होगा, स्व-पर का भेद मिट सकेगा। वह कहेगा कि यह घर, यह जमीन, यह संपत्ति, 'सबकी' है। इसी से सम्पूर्ण विश्व में शांति शिक्षा की परिकल्पना पूर्ण हो सकती है।

आचार्य विनोबा ने 'नई तालीम' के अन्तर्गत बालकों में सामाजिकता के विकास की बात भी कही है जो कि शांति शिक्षा का एक महत्वपूर्ण तत्व है। वे बताते हैं कि आज का सामाजिक ढांचा अनेक प्रकार के भेदों पर खड़ा है। इसलिए नयी तालीम से हिन्दुस्तान के सब बच्चे एक साथ खाएंगे, खेलेंगे और पढ़ेंगे। हम भिन्न-भिन्न धर्मों की बुराइयों को छोड़ेंगे और अच्छाइयों को अपनायेंगे। यह हमारे समाज में शांति स्थापित करने की दिशा में बहुत सहायक सिद्ध होगा।

वे कहते थे कि शांति पक्षी पेड़ पर नहीं, आपके सिर में है। अर्थात् आपका शरीर एक पेड़ ही है। लेकिन ''उर्ध्वमूलं अधःशाखम्'', अर्थात् उसका मूल (दिमाग) ऊपर और शाखा (हाथ पैर) नीचे हैं। शांति पक्षी के दो पंख हैं, उत्पादन और प्रेम, आर्थिक और परमार्थिक, विज्ञान और आत्मज्ञान।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आचार्य विनोबा जी के चिन्तन में निहित शांति संबंधी विचार शांति शिक्षा को आधार देता है। उनके अनुसार आज के तनावपूर्ण समाज में स्वयं को समाज के साथ सामंजस्य बनाये रखने के लिए शांति शिक्षा की महती आवश्यकता है और इस आवश्यकता की पूर्ति में विद्यालय के साथ-साथ परिवार की भी अपनी एक विशेष भूमिका होती है। परिवार में जब बालक होता है, तब वह अपने माता-पिता, चाचा, दादा-दादी आदि के सम्पर्क में रहता है। ऐसे में उनकी पूर्ण जिम्मेदारी बनती है कि वे अपने बालकों में नैतिक मूल्यों को विकसित करें क्योंकि बाद में यही नैतिक मूल्य सुसंस्कार का रूप लेकर बालक का जीवन संवारते हैं। इन्हीं संस्कारों के साथ बालक विद्यालय में प्रवेश करता है, अब विद्यालय का पूरा उत्तरदायित्व बनता है कि वह अपने बालक को इस योग्य बनाये कि वह इस तनावपूर्ण समाज से न केवल सामंजस्य ही बनाये अपितु इस समाज का शुद्धीकरण भी करे।

आचार्य विनोबा जी आगे कहते हैं कि शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि उससे विद्यार्थी को अपने समग्र विकास की सामग्री मिले। मन की जितनी भी शक्तियाँ हैं वे सब ऋषि-मुनियों ने हमें समझा दी हैं। हमें अनुभवी पुरुषों ने सिखलाया है कि मुख्य शिक्षण वही है जिससे हम अपने आपको मन और शरीर से भिन्न मान सकें। स्वयं

की यह पहचान ही सर्वोपरि गुण है। इसके लिए उसे अपने आप पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। इसी से बालक का चित्त शान्त होता है और अपने समाज को सुखी और समृद्ध बनने की दिशा में अग्रसर हो पाता है। आचार्य विनोबा जी के दृष्टिकोण से यही शांति शिक्षा का मूल है जो हम सबको इस जटिल सामाजिक ताने-बाने में उलझाता नहीं बल्कि शान्त चित्त से इस जटिलता में जीवन जीने की कला सिखाता है। सार रूप में यदि कहें तो आचार्य विनोबा जी के अनुसार इस तनावपूर्ण संसार में स्वयं को अवसाद ग्रस्त किये बिना जीवन जीने की कला की शिक्षा ही शांति शिक्षा है।

आचार्य विनोबा जी के सिद्धान्तों में निहित शांति शिक्षा की अवधारणा पर विचार करें तो उसके उद्देश्य निम्नवत् दृष्टिगत होते हैं :

शिक्षा के उद्देश्य

1. **व्रत स्नातक बनाना :** आचार्य विनोबा जी के अनुसार जब कोई विद्यार्थी गुरू के पास रहकर विद्यार्जन करता था तो वह केवल विद्या स्नातक कहा जाता था। उसे पूर्ण स्नातक बनने के लिए विद्या-स्नातक होने के साथ ही उसे व्रत स्नातक भी होना पड़ता था। व्रत-स्नातक से तात्पर्य आत्म-दमन तथा आत्म-नियमन की कला। अतः आचार्य विनोबा के दर्शन के अनुसार शांति शिक्षा का प्रथम उद्देश्य छात्र को स्व-नियंत्रण की कला में पारंगत करना है, यह शांति के परिदृश्य की अनिवार्य शर्त है।

   इस तरह जब विद्यार्थी तपकर संसार में प्रवेश करता है तो वह आत्म विश्वास से भरा होता है और सांसारिक समस्याओं का एक वीर योद्धा के समान सामना करता है।

2. **विनम्रता का विकास :** यह सर्वविदित है कि विद्या से विनय का जन्म होता है और शांति शिक्षा का दूसरा उद्देश्य बालक को विनयी बनाना है। आचार्य विनोबा जी कहते हैं कि एक विनयी विद्यार्थी ही शान्त एवं सुरक्षित समाज की नींव रख सकता है। वे कहते थे कि हमें सदा गुण ग्रहण करने चाहिए। आचार्य विनोबा जी समझाते थे कि हम सब में असंख्य दोष होते हैं और एक-आध ही गुण होते हैं और ये दोष देह से संबंधित होते हैं जबकि गुण का सम्बन्ध आत्मा से होता है, यह देह तो अन्त में जल या नष्ट हो जाती है, हमारे समस्त दोष भी उसके साथ जल जाते हैं किन्तु मनुष्य के गुण ही उसकी आत्मा का मुख्य स्वरूप होता है। अतः हमें हमेशा दूसरों के गुण ग्रहण करने चाहिए।

3. **धैर्य का विकास :** आचार्य विनोबा जी का मानना था कि विश्व शांति की स्थापना तभी सम्भव हो सकती है जब हमारे बालकों को धैर्य का पाठ पढ़ाया जाये। धैर्य शिक्षा शांति शिक्षा का ही एक आयाम है। अतः शिक्षा का तीसरा उद्देश्य धैर्य का विकास है। धैर्य के पाठ के बिना शांति शिक्षा की संकल्पना नहीं की जा सकती है। वे कहते थे कि जब तक कष्ट सहने की तैयारी नहीं होती तब तक लाभ दिखाई नहीं देता। लाभ की इमारत कष्ट की धूप में ही बनती है और इस कष्ट की धूप में पकने के लिए धैर्य परम् आवश्यक तत्व है, इस तत्व के अभाव में हमारा व्यक्तित्व असंतुलित हो सकता है हम भग्नाशा के शिकार हो सकते हैं। यहीं से हमारे जीवन में अशांति का प्रवेश हो जाता है और फिर वह समाज में पहुँच कर पूरे वातावरण को दूषित कर सकता है। अतः शांति शिक्षा के द्वारा बालकों में धैर्य का विकास आवश्यक है।
4. **सहयोग का पाठ :** आचार्य विनोबा जी का मानना था कि शांति शिक्षा के द्वारा हमारे छात्रों में सहयोग का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए जिससे उनमें सहयोग की भावना पनप सके और फिर वह विस्तृत होकर विश्व शांति का रूप ले सके। इस प्रकार आचार्य विनोबा के अनुसार शांति शिक्षा का चौथा उद्देश्य छात्रों में सहयोग के प्रति संवेदनशीलता को जाग्रत करना है। वे बताते हैं कि हमारे वेदों में भी विश्व शांति की ही कामना की गई है न कि किसी क्षेत्र विशेष की। उनका कहना था कि समाज में काम करने के दो तरीके, दो मार्ग होते हैं। एक मार्ग है ऊपर वालों की तरफ देखकर, संघर्ष की भावना और बल से आपनी ताकत से उनको एक सतह पर लाना। इसमें मत्सर की भावना होती है। दूसरा मार्ग है– अपने से नीचे वालों की तरफ देखकर जो ज्यादा दुःखी है, उनके पास मदद के लिए पहुँचना–जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है, वैसे ही कोई अपने से ज्यादा दुःखी की ओर दौड़े। दरअसल यह दूसरा मार्ग नहीं, बल्कि एक मात्र सही मार्ग है। बाकी अन्य मार्ग हैं। इससे समाज में जो समत्व आयेगा वह करुणामूल होगा।
5. **योग शिक्षा :** आचार्य विनोबा ने शांति शिक्षा हेतु पाँचवां उद्देश्य छात्रों में योग को उनके जीवन का महत्वपूर्ण अंग बनाना बताया था। आचार्य विनोबा कहते थे कि योग का अर्थ आसन लगाना या व्यायाम करना ही नहीं है, अपितु चित्त पर अंकुश कैसे रखना, इन्द्रियों पर कैसे सत्ता रखना, मन पर कैसे काबू पाना, वाणी पर सत्ता प्राप्त करना योग का सच्चा अर्थ है और समाज में शांति हेतु चित्त पर सत्ता रखना,

चित्त पर अंकुश रखना, स्थिर रखना, जिसको गीता स्थित-प्रज्ञा कहती है, ऐसी स्थित प्रज्ञा की बहुत आवश्यकता है।

6. **धार्मिक भावना का विकास :** आचार्य विनोबा ने शांति शिक्षा का छठा उद्देश्य छात्रों में धार्मिक भावना का विकास बताया। वे कहते थे कि धार्मिक शिक्षण दिलचस्प विषय है। उनका कहना था कि सच्चा धर्म शिक्षण साहित्य का विषय ही नहीं है बल्कि चरित्र, निष्ठा, ईश्वर, विषयक श्रद्धा और देह से पृथक आत्मा का ज्ञान है, यही धर्म का सार है और वह सत्पुरुषों की संगति से मिलता है। वे स्वीकार करते थे कि धार्मिक शिक्षा का विषय अत्यन्त संवेदनशील है। हमारे देश में अनेक धर्म होने के कारण मुश्किल होती है। इसके लिये यही करना होगा कि शिक्षा का जिम्मा स्टेट को नहीं उठाना चाहिए, वह ज्ञानियों के जिम्मे है। उनका मानना था कि धार्मिक भावना आध्यात्मिक विकास की प्रथम सीढ़ी है और चित्त को अनुशासित करने के साथ शांति प्रदान करने का काम भी करती है। यहीं से विश्व-शांति की भावना जाग्रत होती है।

   उनका मानना था कि हमें पाठ्यक्रम में सब धर्मों का समन्वय करना होगा। सब धर्मों के अच्छे अंश लेकर पाठ्यक्रम में संयोजित करके बालकों के अन्दर धार्मिक भावना का विकास उनके हृदयों में शांतिा स्थापना हेतु परमावश्यक है।

पाठ्यक्रम

1. **योग शिक्षा :** विनोबा जी मानते थे कि योग शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य भाग बनाना चाहिए। योग छात्र को अनुशासित बनाता है। वे कहते थे कि योग चित्त पर अंकुश रखता है, इन्द्रियों पर, मन पर नियंत्रण का पाठ सिखाता है। वे कहते थे कि निष्काम कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों से जुड़ने पर ही योग बनता है। अर्थात् हमारे बालक में निष्काम कर्म, शक्ति और ज्ञान, तीनों समान रूप से विकसित होने पर ही उसमें योग का समाहार होगा और वह शांतिपथ पर चल पड़ेगा।

2. **उद्योग शिक्षा :** वे शिक्षा में दूसरे विषय के रूप में उद्योग की बात करते थे। वे कहते थे कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य गुण का विकास होना चाहिए, परन्तु बिना उद्योग के न गुण का विकास होता है, न गुणों की परख होती है। उद्योग शब्द का अर्थ उत्+योग अर्थात् ऊँचा योग है। विनोबा जी के अनुसार हमारे विद्यालयों के साथ ही तीन एकड़ का खेत जुड़ा होना चाहिए। बच्चों को और शिक्षकों को थोड़ी देर एक साथ खेती पर काम करना चाहिए। प्रकृति के साथ सम्बन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। खेती के साथ हर मनुष्य का संबंध होना ही चाहिए।

3. **धार्मिक शिक्षा :** आचार्य विनोबा की इच्छा थी कि समाज में शांति की स्थापना के लिए पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा को प्रमुख स्थान देना चाहिए। पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा के लिए सभी धर्मों का अच्छे अंशों का समन्वय करना होगा।

4. **इतिहास :** इतिहास हमें बताता है कि मानवीय जीवन के मूल्य किस प्रकार सिद्ध होते गये और कैसे सिद्ध हुआ करते हैं तथा हम कहाँ हैं और कैसे आकर पहुँचे हैं। भूतकालीन अनुभवों से कुछ सीखने के लिए इतिहास का अध्ययन करना होता है। इतिहास हमें विवेक देता है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से लड़े यह ठीक नहीं है, युद्ध किसी भी हालत में ठीक नहीं है। इस तरह समाज का विवेक विकसित होता जाता है। हमारा विवेक बनाने में जिन-जिन व्यक्तियों का योगदान है, उनकी जानकारी इतिहास हमें देता है। विनोबा जी आगे बताते हैं कि बालकों को उतना ही इतिहास पढ़ाना चाहिए जो उनमें नैतिकता का विकास करे।

5. **गणित :** आचार्य विनोबा गणित को आध्यात्मिक खोज मानते थे। इसके लिए उन्होंने ''साम्यसूत्र'' के गणित सहकारि सूत्र का उल्लेख भी दिया है। वे बताते हैं कि आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाये तो जो गिनतीपूर्वक सब कुछ करता है उसे दुखनाशन योग प्राप्त होता है। फिर हिसाब से अरुचि क्यों हो? और हिसाब रखेंगे किन्तु देखेंगे नहीं ऐसा कहा जाये तो वह समाजविरोधी बात मानी जायेगी। वे कहते हैं कि हिसाब देना यानि ज्ञान को सामुदायिक करना है। अत: इस प्रकार देखें तो कहा जा सकता है कि शांति शिक्षा के पाठ्यक्रम में गणित का अपना विशिष्ट स्थान है।

6. **संगीत :** आचार्य विनोबा जी की मानें तो शांति शिक्षा के पाठ्यक्रम में संगीत को भी आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए क्योंकि संगीत में ईश्वरीय गुण विद्यमान होता है और संगीत बालक में दैवीय गुण विकसित करने में सक्षम है।

7. **कला :** वे कहते थे कि हमारे शिक्षण के पाठ्यक्रम में पहली कक्षा से ही चित्रकला को स्थान दिया जाना चाहिए। वे चित्रकला के शिक्षण के साथ-साथ बालक में चित्रकला दृष्टि के विकास पर भी बल देते थे। उनका कहना था कि जिसे चित्रकला की दृष्टि प्राप्त है वह व्यक्ति व्यवहारिक जीवन में कभी भी बेढंगा व्यवहार नहीं करेगा। चित्रकला से बच्चों की सिर्फ उंगलियों में सिफत आना ही काफी नहीं, उनके नेत्रों को भी चित्रकला में दक्ष होना चाहिए।

8. **संस्कृत :** आचार्य विनोबा जी की संस्कृत में दृढ़ आस्था थी, वे कहते थे कि संस्कृत अध्यात्म की भाषा है। संस्कृत में अध्यात्म विद्या है। मैं चाहता हूँ कि लोग संस्कृत सीखें। संस्कृत में वेद उपनिषद हैं, गीता है, ब्रह्मसूत्र, सांख्यसूत्र, योगसूत्र हैं, रामायण, महाभारत, भागवत पुराण, अनेक भाष्य आदि असंख्य ग्रन्थ पड़े हैं। उनमें आत्मा का विचार दिया गया है। मनुष्य को निर्भय बनाने की शक्ति उनमें पड़ी है। संस्कृत के दोहों में ''विश्वमानव'' का विचार दिया गया है। परिणामस्वरूप अहिंसा का विचार बहुत सूक्ष्म रीति से संस्कृत से विकसित हुआ। संस्कृत के शब्दों में तिरस्कार का भाव नहीं होता उसके शब्दों में अत्यन्त आदर सम्मान निहित होता है। उनका मानना था कि विद्या की जननी संस्कृत मानव धर्म की भाषा है।

शिक्षण विधि

1. **ब्रेड लेबर :** शरीर का पोषण शरीर श्रम से करना चाहिए। इसी को ब्रेड लेबर कहते हैं। इसी को भगवत गीता में 'यज्ञ' नाम दिया गया है। इसी का जिक्र ईसा ने किया है कि अपने पसीने से जो रोटी कमाता है वह ब्रेड लेबर है। ''नयी तालीम'' में यह एक मूलभूत सिद्धान्त है। अत: आचार्य विनोबा के अनुसार विद्यालयों में छात्रों से शरीर श्रम अवश्य करवाने का प्रावधान किया जाना चाहिए।
2. **प्रार्थना :** आचार्य विनोबा जी के अनुसार प्रार्थना बड़ी ही सुन्दर क्रिया है। इस क्रिया से चित्त का क्षालन होता है, वह धुल जाता है। सामूहिक रीति से सभी पाँच मिनट शान्त बैठें और परमेश्वर का स्मरण करें। परमेश्वर के सामने हृदय खोलकर रख दें। उनके अनुसार इससे मन में एक शक्ति का संचार होता है जो छात्र के मन को शान्त रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। अत: शांति शिक्षा हेतु प्रार्थना एक महत्वपूर्ण विधि है।
3. **भ्रमण यात्रा :** आचार्य विनोबा जी कहते थे कि हमारे विद्यालयों में छात्रों के व्यक्तित्व के विकास के लिए यात्रा का प्रबन्ध करना चाहिए। वे पैदल यात्रा के विशेष पक्षकार थे। वे कहते थे कि यात्रा का पुण्य तो पैदल घूमने से ही मिलता है। आचार्य विनोबा के अनुसार वे सभी स्थान यात्रा के योग्य हैं जहाँ-जहाँ सज्जन लोग निवास करते हैं। इससे छात्रों को सज्जन संगति का लाभ मिलता है।
4. **कंठस्थ करना :** आचार्य विनोबा कहते थे कि बच्चों को प्रथम दिन से ही उपनिषद की कहानियाँ एवं उत्तम श्लोक कंठस्थ करना सिखाना चाहिए। वे कहते थे कि कुछ लोगों का कहना है कि कंठस्थ करना गलत है। लेकिन रस्किन को पाँच साल की उम्र में ही सारी ''बाइबिल'' कंठस्थ हो गई थी और उसी से इसका

सारा जीवन बना है। उनका कहना था कि विद्यार्थियों को उत्तम अर्थ-ज्ञान से युक्त कम से कम दस हजार श्लोक तो कंठस्थ रहने चाहिए। विद्या कंठगत होनी चाहिए। क्योंकि विषय के बोध का प्रथम पायदान कंठगत ही है।

5. **प्रत्यक्ष जीवन द्वारा ज्ञान :** आचार्य विनोबा जी का मानना था कि बालकों को जो ज्ञान दिया जाये इसको प्रत्यक्ष वस्तु से संबंधित करके दिया जाये। बच्चे को पर्याय पद बताते समय पदार्थ भी बताना चाहिए। यदि घोड़े के विषय में बच्चे को बताना है तो उसे घोड़ा दिखाना भी आवश्यक होगा। उन्होंने कहा था कि इस संसार में कोई मरता है, कोई जन्म लेता है, कोई बीमार होता है, कोई अच्छा होता है, ये सभी ज्ञान के साधन ही हैं। ज्ञान हमारे चारों ओर भरा पड़ा है।

अध्यापक

आचार्य विनोबा जी का मानना था कि शिक्षकों का विद्यार्थियों पर प्रेम होना चाहिए, वात्सल्य और अनुराग होना चाहिए। शिक्षकों के लिए 'शिष्यदेवो भव' शिष्य ही उनके देव हैं और उनकी भक्तिपूर्वक एकनिष्ठा से सेवा करना ही शिक्षक का कर्त्तव्य है। वे कहते थे कि विद्यार्थियों के लिए गुरु सेवा और शिक्षकों के लिए विद्यार्थी सेवा पर्याप्त ध्येय, एकमात्र ध्येय और अनन्य ध्येय होना चाहिए। दोनों मिलकर परमेश्वर की सेवा कर रहे हैं ऐसी अनुभूति बनानी चाहिए।

शिक्षकों को निरन्तर अध्ययनशील होना चाहिए। रोज नया अध्ययन जारी रहे और ज्ञान की वृद्धि होती चली जाये। शिक्षक को अपनी ज्ञानशक्ति पर विश्वास होना चाहिए। शिक्षक को ज्ञान समुद्र होना है। उसको ज्ञान की उपासना करनी है। शिक्षक के लिए निरन्तर चिन्तनशीलता, ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ अपने शिष्यों के लिए अत्यन्त प्रेम, वात्सल्य भी होना चाहिए।

शिक्षक तटस्थ हों। वे कहते थे कि तटस्थ वृत्ति के बिना सृष्टि रहस्य पाना सम्भव नहीं। शिक्षकों को दलीय राजनीति से दूर रहना चाहिए। अगर शिक्षक भी राजनीति में रंगे हों तो उनके सिर पर राजनीति का वरदहस्त हो तब तो समझाना चाहिए कि गंगा मैया समुद्र की शरण गयी, लेकिन समुद्र ने उनको स्वीकार नहीं किया, तो जो हालत गंगा मैया की होगी, वही हालत विद्या की होगी। आचार्य के अनुसार शिक्षक की आध्यात्मिक हैसियत है, उसके चित्त पर, बुद्धि पर कोई बोझ नहीं होना चाहिए।

आचार्य विनोबा के अनुसार, शिक्षकों को कोऽहम् (मैं कौन हूँ) का जबाव ढूंढ लेना चाहिए। शिक्षक होने के साथ-साथ दूसरा भी कुछ होने की स्थिति रहेगी तो शिक्षक के

काम को न्याय नहीं मिलेगा। वे कहते थे कि शिक्षक को अनुभूति होनी चाहिए कि मैं सबसे पहले शिक्षक हूँ। शिक्षण एक श्रेष्ठ काम है।

'गुरु मुखि नादं गुरुमुखि वेदं।' नाद और वेद का अपना एक महत्व है। फिर भी जब वे गुरु के मुख से आते हैं तब उनका महत्व बढ़ जाता है। ध्यान से जो तालीम मिलती है उसे 'नाद' और शास्त्रों के ज्ञान को 'वेद' कहा जाता है। गुरु के मुँह से ही नाद और वेद का ज्ञान प्राप्त होना चाहिए।

आचार्य विनोबा के अनुसार शांति-शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों को यदि आचार्य कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। आचार्य अर्थात् आचारवान। स्वयं आदर्श जीवन का आचरण करते हुए राष्ट्र से उसका आचरण करा लेने वाला ही आचार्य है। राष्ट्र का काम हमारे सामने है। आज हिन्दुस्तान की नयी रचना करनी है। आचारवान शिक्षकों के बिना यह सम्भव नहीं है। आचार्य विनोबा शिक्षक को भारत का 'शांति सैनिक' कहकर बुलाते थे। वे कहते थे कि शांति स्थापित करने का सर्वोत्तम शस्त्र हमारे पास है शिक्षा और ज्ञान। इससे बढ़कर शांति स्थापना का शस्त्र क्या हो सकता है। उनके अनुसार, समाज में व्याप्त अशांति का दमन तो कानून व्यवस्था कर सकती है किन्तु अशांति का शमन तो शिक्षक ही कर सकते हैं। शिक्षक समाज को एक विचार देता है, विचार परिवर्तन, हृदय परिवर्तन और जीवन परिवर्तन की दिशा दिखा सकता है। समाज में कहीं अशांति है तो शिक्षक अपने विचार एवं नैतिक शक्ति द्वारा अशांति का शमन करे, ताकि सरकार की दण्डशक्ति को अशांति दमन के लिए मौका ही न मिले। इसीलिए उन्होंने शिक्षकों का परिचय शांति-सैनिक संज्ञा के द्वारा दिया है। वे कहते थे कि अशांति शमन के लिए सब आचार्यों को एकत्र होकर व्यापक योजना बनानी होगी। वे कहते थे कि शिक्षक-विभाग को अशांति-शमन-विभाग कहा जाना चाहिए। उनके अनुसार आचार्य कुल का सर्वप्रथम कार्यक्रम होगा शांति सेवा का।

छात्र

आचार्य विनोबा छात्र के सम्बन्ध में मानते थे कि छात्र का मस्तिष्क स्वतंत्र होना चाहिए। छात्र को परिपूर्ण स्वतंत्रता का अधिकार है। वे कहते थे कि बौद्धिक स्वतंत्रता के साथ-साथ छात्रों में श्रद्धा की भी उतनी ही आवश्यकता है क्योंकि ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रद्धा एक बुनियादी आवश्यकता है, ज्ञान का आरम्भ ही श्रद्धा से होता है और समाप्ति स्वतंत्र चिन्तन से होती है। इसलिए छात्र को चिन्तन-स्वातंत्र्य का अपना अधिकार कभी नहीं खोना चाहिए।

आचार्य विनोबा ने छात्र के विषय में आगे बताया कि स्वयं पर नियंत्रण रखना छात्र का कर्त्तव्य है। स्वतंत्रता को अपने हाथ में वही रख सकेगा जिसका स्वयं पर नियंत्रण होगा। छात्र को स्थितप्रज्ञ बनना चाहिए, उसको मन, इन्द्रिय, बुद्धि आदि पर नियंत्रण होना चाहिए।

छात्र–अवस्था में संयम की महान विद्या सीख लेनी चाहिए। वे कहते थे कि बारिश का सारा पानी अलग–अलग दिशाओं में इधर–उधर वह जाये तो नदी नहीं बनेगी। नदी बनने के लिए नियत दिशा चाहिये। छात्रों को निरन्तर सेवा परायण रहना चाहिए। बिना सेवा के ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। उन्हें यह नहीं समझना चाहिए कि हम सेवा करते हैं, तो अध्ययन कैसे होगा? लेकिन यह विश्वास होना चाहिए कि सेवा से ही ज्ञान प्राप्त होता है।

आचार्य विनोबा कहते थे कि छात्र वह है, जिसको विद्या की लगन हो, जो निरन्तर चिन्तन, मनन करता हो। प्रतिदिन कम से कम एक घण्टा शरीर परिश्रम करना चाहिए और उससे जो आय हो वह समाजोपयोगी काम में खर्च करनी चाहिए। अवकाश के दिनों में इर्द–गिर्द के गाँवों में जाकर सफाई या अन्य सामाजिक सेवा करनी चाहिए। छात्र को अपने से भिन्न धर्म, भाषा, जाति अथवा पंथ के किसी व्यक्ति को अपना मित्र बनाना चाहिए। इससे विभिन्न समुदाय के भेद खत्म करने का मार्ग मिल जायेगा। छात्रों को सुबह शाम आधा घण्टा व्यायाम करना चाहिए। 'जल्दी सोकर, जल्दी उठना'– उनके जीवन का सूत्र होना चाहिए।

वे छात्रों के अध्ययन के विषय में कहते थे कि छात्र को समाधिस्थ होकर नित्य निरन्तर थोड़ी देर तक किसी निश्चित विषय का अध्ययन करना चाहिए। उनके अनुसार 'समाधि' अध्ययन का मुख्य तत्व है। जीवन की निश्चित दिशा तय कर लेनी चाहिए, अर्थात् कहाँ है और कहाँ पहुँचना है। उस पर लक्ष्य रखे बिना इधर–उधर भटकते रहने से रास्ता तय नहीं हो पाता।

सारांश में उनके अनुसार गम्भीर अध्ययन का सूत्र है– 'अल्पमात्रा, सातत्य, समाधि, कर्मावकाश और निश्चित दिशा।'

विद्यालय

आचार्य विनोबा जी कहते थे कि विद्यालय में होने वाला प्रत्येक काम ज्ञान का साधन होना चाहिए। इसके लिये विद्यालय को सजाना होगा। अच्छे–अच्छे साधन जुटाने होंगे। इससे छात्रों में अपने विद्यालय के प्रति रागात्मक लगाव बढ़ेगा। वे ज्ञान प्राप्ति के लिए तत्पर होंगे। वे कहते थे कि विद्यालय में स्वावलम्बन हो। उनका सुझाव था कि बच्चे

छः घण्टे मेहनत करके शरीर श्रम से रोटी कमायें और दो घण्टे उसके परिपोषक के रूप में उन्हें ज्ञान, विज्ञान की शिक्षा दी जाये। छात्रों पर खर्च न तो उनके माता-पिता करें और न ही विद्यालय, फिर चाहें वे अमीर के बच्चे हों या फिर गरीब के। ऐसा करने से ही सच्चा प्रयोग होगा और देश आगे बढ़ेगा।

वे आगे कहते थे कि हमारे विद्यालय ग्राम विकास का केन्द्र होने चाहिए। हमारे विद्यालय सेवा का केंद्र होने चाहिए। यहीं से हमारे छात्र में शांति का बीज पनपेगा। गाँव की प्रत्येक गतिविधि में विद्यालय की भूमिका होनी चाहिए, चाहें वो गाँव का झगड़ा हो या कोई उत्सव हो। इस तरह गाँव का केंद्र बिन्दु विद्यालय बनेगा जो चीज गाँव में है उसका विकास विद्यालय करेगा और जो चीज गाँव में नहीं है, विद्यालय उसकी स्थापना करेगा।

आचार्य कहते थे कि विद्यालय में सत्य-निष्ठा का निर्माण करने का हमें अधिक से अधिक प्रयत्न करने चाहिए। इसके लिए छात्रों पर विश्वास करना आवश्यक है। जो सत्य-निष्ठ होता है, वह दूसरों पर हमेशा विश्वास करता है।

अनुशासन

अनुशासन के संदर्भ में आचार्य विनोबा कहा करते थे कि छात्रों में अनुशासन बाह्य रूप से न थोपा जाये बल्कि मूल्य परक कहानियों एवं मूल्य शिक्षा द्वारा स्वाभाविक रूप से शनैः-शनैः बालक के मन को अनुशासित किया जाना चाहिए। अनुशासन स्थापित करने के लिए आध्यात्मिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए। वे आगे कहते हैं कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों ने 'विद्या' को 'विनय' नाम भी दिया है। शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी को 'विनीत' कहते हैं। इसलिए आदर्श शिक्षण का परिणाम विनय में जरूर होना चाहिए परन्तु वह विनय गुलामी के रूप में नहीं होगा, बल्कि वह विनय समाज की गलत कल्पनाओं का सामना करने के लिए खड़ा होगा।

आचार्य विनोबा छात्रों के लिये स्वयं अनुशासन की बात करते थे। वे कहते थे कि नयी तालीम छात्रों पर अनुशासन नहीं चलाती। छात्र को पूर्ण मुक्त रखना चाहती है। वे कहते थे कि विद्यार्थी को यदि किसी पर सबसे अधिक अधिकार है तो वह है उसकी स्वतंत्रता। ऐसी ही स्थिति छात्रों में स्वयं अनुशासन की भावना जन्म लेगी तथा उस भावना का विकास हो पायेगा। आचार्य विनोबा कहते थे कि छात्र में अनुशासन का जन्म संस्कार से होना चाहिए। इस हेतु पहले घर में भक्ति का भाव सिखाया जाना चाहिए। इस दृष्टि से पूरे भारतवर्ष में कोई भी अशिक्षित या असंस्कृत नहीं होगा। हर एक को अपने-अपने घरों में शुद्ध संस्कार प्राप्त होंगे। संस्कार से जो अनुशासन पनपता है वह किसी और पद्धति से नहीं पनप सकेगा।

आचार्य विनोबा कहते थे ''मेरा सारा जीवन ही शिक्षण कार्य में बीता और बीत रहा है। कभी आत्म-शिक्षण चला, कभी विद्यार्थियों का शिक्षण।'' अतः यह स्पष्ट है कि आचार्य विनोबा मूलतः एक शिक्षक ही थे। उनके अन्तर्मन में एक शिक्षक विद्यमान था। शिक्षण के सम्बन्ध में आचार्य कहा करते थे कि शिक्षक और छात्र, दोनों एक-दूसरे के आचरण से शिक्षा पाते हैं। दोनों विद्यार्थी हैं। जो दिया नहीं जाता वही शिक्षण है। जो लिया जाता है, जिसका हिसाब रखा जा सकता है या जिसका कुछ लेखा हो सकता है, वह शिक्षण नहीं है। जीवन ही शिक्षण है। 'सैलरी' का सच्चा हिसाब कागज पर नहीं शरीर पर दिखता है जो अनुभव में आया, खाया, पचा और रक्त में एकत्र हो गया, वही सच्चा शिक्षण है।

वस्तुतः दर्शन ही शिक्षण को संचालित करता है आचार्य विनोबा का दर्शन शांति प्रेरित और साथ ही शांति उन्मुख था। वह पूरे परिदृश्य में शांति को ही स्थापित देखना चाहते थे और उनके इस स्वप्न की पूर्ति उनके द्वारा संकलित शांति शिक्षा से ही संभव है।

आचार्य विनोबा के शांति शिक्षा संबंधी दर्शन के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विश्व को शांति की ओर अग्रसर करने में हमारे विद्यालयों एवं शिक्षकों के अधिक गम्भीर एवं सार्थक समर्पण की आवश्यकता है। हमारे विद्यालयों को कृत-संकल्प होकर छात्रों के अन्दर शांति सम्बन्धी मूल्यों-क्षमा, करुणा, सहयोग, सदभावना, प्रेम आदि मूल्यों का विकास करना होगा। आचार्य विनोबा के अनुसार भावी पीढ़ी में इन नैतिक मूल्यों के हस्तान्तरण के बिना शांति शिक्षा को प्राप्त नहीं किया जा सकता है जो आज के आधुनिक क्रान्तिकारी, संघर्षयुक्त समाज की महती आवश्यकता है।

संदर्भ

भट्ट, मीरा : सन्त विनोबा, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1995, पृ. 3, 8

जोशी, बाबूराम : सन्त विनोबा भावे, नारायण पाठक सस्ता साहित्य प्रेस, अजमेर, 1993, पृ. 53

वॉहसन, एफ. : इनसाक्लोपीडिया एण्ड डिक्शनरी ऑफ एजुकेशन, आकाशदीप पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1981, पृ. 126, 41

विनोबा साहित्य 17 शिक्षा, स्त्री शक्ति, कार्यकर्त्ता - पाथेय और गाँधी : जैसा देखा समझा, परंधाम प्रकाशन, पवनार वर्धा, लक्ष्मी नारायण देवस्थान वर्धा, 1997, पृ. 46, 47, 49, 65, 66, 67, 100, 1001, 130, 148, 149, 185, 188

विनोबा साहित्य शेषामृतम्, परंधाम प्रकाशन, पवनार वर्धा, लक्ष्मी नारायण देवस्थान वर्धा, 2001, पृ. 49-50, 254-255, 273-276